अध्याय–४

मारवा थाट तथा उसके जन्य रागों का अध्ययन

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत अपनी विशिष्टता के कारण विश्व संगीत में सर्वोत्तम स्थान रखता है । विश्व संगीत की अवधारणा में भारतीय संगीत श्रेष्ठ संगीत की भूमिका में विद्यमान है । उत्तर भारतीय संगीत में थाटों का एक विशिष्ट महत्व रहा है । थाटों के विषय में अनेक मतमतांतर के साथ नवीन थाट रचनाओं का औचित्य प्राप्त होता है । वह थाटों में से मारवा थाट का एक पारंपारिक अध्ययन तथा आधारतत्त्वों को समाहित करने का प्रयास इसमें किया गया है । मारवा थाट के विषय में प्रमुख संगीतज्ञों के द्रष्टिकोण को समावित करने के साथ ही संगीत में मारवा थाट का स्थान, मारवा थाट की उत्पत्ति और विकास के साथ ही मारवा थाट में राग की उत्पत्ति स्पष्ट की है । यह थाट की उपयोगिता एवं यह थाट के प्रचलित राग और अप्रचलित राग का विषयोचित्त अध्ययन करने किया है साथ ही उनके प्रमुख तत्त्वों का विशिष्ट महत्त्व समझाया है । जो कि इस महा शोधनिबंध के इस प्रकरण में विवरण दर्शाया गया है ।

4.1 मारवा थाट

पं. भातखंडेजीने विकृत 'ऋषभ' तथा 'मध्यम' वाले ठाठ को मारवा के नाम से पुकारा, क्योंकि उनके मतानुसार मारवा राग मालव या मारव राग ही का परिवर्तित रूप था, जो एक समय में प्रख्यात राग था । कुछ प्राचीन संगीतज्ञ ऐसे भी मिलते हैं, जिनके मतानुसार मारवा श्री राग की रागिनी थी और इस प्रकार यह भी एक प्राचीन राग था, जो सरलता से जनक ठाठ की कोटि में रखा जा सकता था ।

उपरोक्त कथन बहुत अंशों में सत्य है, परंतु मारवा को जनक ठाठ की कोटि में रखने में दो मुख्य आपत्तियाँ है :-

१. यह एक संपूर्ण राग नहीं है तथा २. यह उतना प्रख्यात राग भी नहीं है, जितना पूर्वकाल में 'मालव' था । वास्तव में एक ठाठ–राग में आरोह तथा अवरोह सरल और सीधे होने चाहिए और

इस दृष्टिकोण से यह ठीक उतरता है । परंतु सर्वप्रथम हम देखेंगे कि मालव का प्रादुर्भाव और विकास किस प्रकार हुआ तथा इसका मालव से क्या संबंध है ।

'संगीत–रत्नाकर' में मालव या मारव नाम का कोई राग नहीं पाया जाता, यद्यपि उस ग्रंथ में इस प्रकार के कुछ अन्य राग मालवकौशिक, मालववेसरो, मालवश्री तथा मालव–पंचम मिलते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बारहवीं शताब्दी में 'मालव' नामक कोई प्रमुख राग व्यवहार में नहीं था, बल्कि एक और राग था, जो पूर्णरूप से प्रचार में था, उसका नाम था 'मालवा' । जो एक प्रचलित भाषा राग था तथा इसकी उत्पत्ति टक्ककैशिक से थी । 'संगीत–रत्नाकर' के अनुसार टक्ककैशिक उस जाति का राग था, जिसमें पंचम की अपेक्षा धैवत का बाहुल्य था और 'म ध' में संवाद था । मालव में भी यह विशेषताएँ विद्यमान थीं; परंतु इसके आरोह तथा अवरोह, दोनों में पंचम का प्रयोग होता था । हमें बाद के संगीत–शास्त्रों की खोज करने पर भी उस समय के मालव में समान विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं । इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि मालव प्राचीन मालवा ही का परिवर्तित रूप था । इन संगीत–शास्त्रों से हमें यह भी ज्ञात होता है कि उस समय का मालव वर्तमान समय के भैरव थाठ का था, जिसमें रे ध विकृत है तथा इसकी मूर्च्छना सा रे ग म प आदि इस प्रकार थी, किंतु इस काल तक हिंदुस्तानी संगीत में अप्रचलित होने पर भी 'शुद्ध मालव' का रूप अस्पष्ट नहीं था ।(1)

सोलहवीं शताब्दी से पूर्व जो राग प्रचलन में था, वह मालवगौड़ था – जिसे ग्वालियर के राजा मान के समय मालव में परिवर्तित किया गया, जैसा कि पुंडरीक विट्ठल (१५५० ई.)के लेखों से स्पष्ट हैं; इन्होंने मालव को मालवगौड़ में मिला दिया । इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि राग मालव भारतीय संगीत में सोलहवीं शताब्दी से पूर्व प्रचलन में नहीं था, यद्यपि कर्नाटक और बंगाल में वह बारहवीं शताब्दी से ही एक स्वतंत्र राग के रूप में प्रचलित था । इस समय मालवगौड़ की मूर्च्छना थी 'ग म ध नि' जैसी कि वर्तमान भैरव ठाठ में है और बाद में वह मालव में भी प्रयोग में आई । परंतु यह मालवगौड़ कहाँ से उत्पन्न हुआ, जो कि शार्ङ्गदेव के समय में पूर्णरूप से अज्ञात था, किंतु मालवगौड़ से हमें इस राग के गौड़ीय जनक का ज्ञान हो सकता है ।

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 32

डॉ. बिमलराय एम. बी. अपने लेख में बताते हुए यह कहते है कि, वास्तव में कर्नाटक तथा बंगाल में बारहवीं शताब्दी में एक मालव राग था, जिसका उल्लेख जयदेव के 'गीत–गोविंद' में मिलता है । चौदहवीं शताब्दी में हमें इस राग की उत्पत्ति के वास्तविक स्त्रोत मिलते हैं । श्री सिंहभूपाल ने रागों की आलोचना करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि तुरूष्क या तुरूष्कगौड़ राग, जिसका उल्लेख हमें 'संगीत–रत्नाकर' में भी मिलता है, उनके समय में मालवगौड़ के नाम से प्रख्यात था और संभवतः तुरूष्क ही मूल राग था, जो कि मालवगौड़ में रूपान्तरित हो गया । यह राग तुरूष्क भी विदेशी राग था और संभवतः मध्य–पूर्व के प्रवासियों से प्राप्त हुआ । इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में प्रचलित मालव राग, जिसका रूप पुंडरीक के समय में 'सा ग म ध नि' था तथा जो वर्तमान भैरव ठाठ के अंतर्गत आता है, तुरूष्क उत्पन्न मालवगौड़ को हमारे मालवा में मिश्रण करने से उत्पन्न हुआ । संभव है कि किसी चतुर संगीतज्ञ ने प्राचीन नाम के मोह में मालव को मालवा का नाम दे दिया हो और इस प्रकार मारवा प्रचलन में आया; परंतु विकृत 'रे म' का प्रयोग इसमें कब से होने लगा, इसका उत्तर अभी तक कोई संगीत शास्त्री नहीं दे पाया ।

सत्तरहवीं शताब्दी के अंत तक विकृत 'रे ध' का प्रयोग मिलता है, इस आधार पर यदि हम मारवा में प्रयुक्त विकृत मध्यम का प्रयोग अठारहवीं शताब्दी का मानें तो उन संगीतज्ञों की विचारधारा को ठेस पहुँचेगी, जो मारवा में विकृत 'रे म' का प्रयोग बैजू, गोपाल और तानसेन के समय से मानते हैं । और यदि हम कहें कि प्राचीन मूर्च्छना–पद्धति से इस प्रकार की उत्पत्ति हुई तो यह कथन भी सत्य प्रमाणित नहीं होगा, क्योंकि किसी भी मूर्च्छना में विकृत ऋषभ और मध्यम प्रमुख स्वर नहीं हो सकते ।

प्राचीन संगीत–शास्त्री १६८ प्रकार की विभिन्न मूर्च्छनाओं से रागों का निर्माण किया करते थे । जिनकी उत्पत्ति और प्रकार चार आधारों पर निर्भर करते हैं । यथा – १. शुद्ध स्वर, २. अंतर, ३. काकली तथा ४. अंतर–काकली का सम्मिश्रण ।

शोधकर्ता ने शोध करने के समय यह जानकारी प्राप्त की है कि, इन प्रकारों में से कोई भी, विकृत 'रे म' का मिश्रण उत्पन्न नहीं कर सका, और यही कारण था कि किसी भी प्राचीन ग्रंथ ने मारवा जैसे ठाठ या राग का उल्लेख नहीं किया । अकेले व्यंकटमुखी ने गणित के आधार पर इस

ठाठ या मेल का निर्माण किया और इसे गमनश्रम नाम दिया । परंतु यह सब कर्नाटक संगीत में था, जबकि हमारा संबंध केवल हिन्दुस्तानी संगीत से है । यहाँ हमें फिर अमीर खुसरो तथा उसके अनुयायीओं पर दृष्टिपात करना होगा । वहीं ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने यमन तथा विकृत 'म' वाले ठाठ का देशव्यापी प्रचार किया, जिसका प्रयोग भारतीय संगीत में पहले यदाकदा ही होता था । इसके उपरांत उन्हीं के प्रयत्नों से विकृत 'रे' युक्त 'साजगिरि' का चलन हुआ । संभव है, यह किसी देशी प्रकार का परिवर्तित रूप हो, जिसका प्रयोग शास्त्रीय संगीत में नहीं होता हो या 'यमन' ही का परिवर्तित रूप हो । अमीर खुसरो के दो नवीन रागों की खोज तथा विकृत 'म' के चलन ने एक नवीन युग को आरंभ किया, जिसके परिणाम स्वरूप पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में कितने ही प्रचलित प्रमुख रागों के रूपों में परिवर्तन हुआ तथा नवीन राग– पद्धति आरंभ हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि राजा मान तथा उनके दरबारी संगीतज्ञ और बाद में तानसेन इन नवीन राग–पद्धतियों के निर्माणकर्ता थे । इसी युग में विकृत 'म' का शुद्ध 'म' के स्थान पर खुलकर प्रयोग किया जाता था और 'टोड़ी' को 'वेराली' के रूप में तथा शुद्ध बसंत को मालववसंत के रूप में कर दिया गया था । इन विभिन्न परिवर्तनों को दृष्टि में रखते हुए हमारे विचारानुसार किसी चतुर संगीतज्ञ ने मालव के विकृत 'रे ध' को विकृत 'रे म' में परिवर्तित कर दिया तथा इसे मारवा नाम दिया । यह बताना संभव नहीं कि इस परिवर्तन को करनेवाले कौन सज्जन थे, परंतु इस सबका परिणाम यह हुआ कि मारवा ठाठ अस्तित्व में आ गया और विभिन्न राग; जैसै – वसंत, ललित, पंचम, जयंत आदि हमें प्राप्त हुए ।

पूरिया भी एक प्राचीन राग है, जिसका शास्त्रीय नाम पूर्वगौड़ था, जिससे पूर्वीया बना । 'रागतरंगिणी' के समय में अर्थात् सत्तरहवीं शताब्दी में पूर्वीया यमन ठाठ का राग था । इससे मारवा की प्राचीनता सिद्ध होती है । परंतु भावभट्ट के युग में पूरिया साधारण और अत्यंत प्रचलित होता है । इसी कारण उस समय के संगीतज्ञों ने भी मारवा की अपेक्षा इसी को प्रधानता दी । इसी कारण मारवा में उस समय के प्रख्यात संगीतज्ञों ने अल्प मात्रा में रचनाएँ हीं । आज भी मारवा की अपेक्षा पूरिया ही लोकप्रिय है । दूसरे पूर्वगौड़ एक प्राचीन प्रकार था, जिसमें शुद्ध 'ध म' और 'रे' का प्रयोग है । यदि विकृत 'रे ध' विकृत 'रे म' तथा शुद्ध 'ध' में परिवर्तित किए जा सकते, तो क्या कारण था

कि 'ध, म, रे' उतनी ही सुगमता से विकृत 'रे म' में परिवर्तित नहीं किए गए, जबकि 'रागतरंगिणी' में 'म' का परिवर्तित रूप दिया हुआ था । यही कारण है, जिससे हमें विश्वास होता है कि पूरिया में मारवा से पहले परिवर्तन हुआ । साथ–साथ पूरिया में एक विशेष सुन्दरता विस्तार की संभावना तथा गहराई है ।

दिन के अंतिम प्रहर का राग होने के कारण मारवा में 'सा रे ग' का प्राधान्य होना चाहिए, किंतु दुर्भाग्यवश इसमें 'ग म ध' की प्रधानता रहती हैं, अतः इस असंबद्धता के कारण भी इसे ठाठ–राग स्वीकार नहीं करना चाहिए । इसके स्थान पर पूरिया का चुना जाना अधिक न्याय–संगत होगा । माना कि दोनों षाडव राग हैं और इस कारण जनक राग के लिए अनुपयुक्त हैं, परंतु कठिनाई यह है कि इस ठाठ में कोई भी सात स्वरोंवाला एक साधारण राग नहीं है, जो कि इन दो रागों का स्थान ले सके ।**(1)**

इन परिस्थितियों में हमें मारवा या पूरिया से ही संतुष्ट होना पड़ता है, जिनमें पंचम वर्ज्य है और इसलिए इसमें कभी प्रम की संभावना नहीं और हम सबही जानते हैं कि पूरिया के दो–तीन रूप हैं, अतः हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि हम मारवा को उसके पूर्व की भाँति जनक राग और ठाठ के स्थान पर आसीन रहने दें ।

उत्तर भारतीय रागों में मारवा एक सायंकालीन राग है । यह उस वर्ग से संबंध रखता है, जिसके अंतर्गत पूरिया, सोहनी और कुछ संगीतज्ञों के मतानुसार हिंडोल राग आते हैं । मारवा और हिंडोल का साम्य उत्तरांग में दिखाई पड़ता है, केवल कोमल ऋषभ के वर्ज्य होने से हिंडोल पूर्वांग में मारवा से पूर्णतः विलग हो जाता है । मारवा, पूरिया अथवा सोहनी का साम्य स्पष्ट प्रतीत होता है । पूरिया एक पूर्वांग राग है, जबकि सोहनी तथा मारवा उत्तरांग राग हैं, अतः मारवा और सोहनी का अंतर प्रस्तुत करना अत्यंत कठिन है ।

स्वर्गीय पं. भातखंडे जी के कथनानुसार सोहनी का वादी स्वर 'ध' और संवादी 'ग' है, जबकि मारवा का वादी स्वर 'ध' संवादी कोमल ऋषभ है । यद्यपि सोहनी और मारवा में संवादी स्वरों में अंतर है, तथापि दोनों के वादी स्वर एक ही हैं । जहाँ तक मारवा में संवादी स्वर धैवत का

1. बी., विमलराय एम. / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 34

संबंध है, उसके संबंध में पंडित भातखंडे जी से हम बिलकुल सहमत नहीं । धैवत और कोमल ऋषभ में वादी–संवादी संबंध कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि श्रुतियों की प्रयोजनीय संख्या १३ अथवा ९ धैवत तथा कोमल ऋषभ के मध्य विद्यमान नहीं है । यदि धैवत वादी है तो इसका संवादी ऋषभ अथवा गांधार होना चाहिए न कि कोमल ऋषभ । हम मारवा में धैवत का संवादी स्वर गांधार सहज रूप से स्वीकार करते हैं । वास्तव में प्राचीन ध्रुवपदों अथवा मारवा की सरगमों में धैवत और कोमल ऋषभ की अपेक्षा धैवत और गांधार को ही प्रधानता दी गई है । अब भी यदि हम मारवा के 'ध' और 'ग' का क्रमशः वादी–संवादी के रूप में विचार करें तो सोहनी और मारवा के अंतर की रक्षा भली प्रकार की जा सकती है । यदि सोहनी में 'ग' और 'नि' को वादी–संवादी के रूप में प्रस्तुत करें तब भी हमारी त्रुटी नहीं होगी । यथार्थ में सोहनी में धैवत की अपेक्षा निषाद का अधिक महत्त्व है । उदाहरणार्थ – 'मधनिसांरें॒सां, निधनि, मधग' इस पकड़ में सोहनी बहुत स्पष्ट है, परंतु धैवत की प्रधानता देने का प्रयास नहीं किया गया है । अब भी यदि हम सोहनी में 'ध ग' को वादी–संवादी के रूप में लें, तब भी 'ध ग' वादी–संवादी के साथ मारवा का रूप विद्यामान रहता है, जैसे – 'धमगमध, मधसांनिरें॒सां, निधमधमगरे॒सा' यह स्वरसंगति सोहनी अथवा पूरिया को प्रकट नहीं करती । पूरिया में 'ऩिरे॒ग' और मारवा में 'ऩिरे॒ग' तथा 'सारे॒ग' दोनों का प्रयोग किया जाता है, परंतु सोहनी के आरोह में 'सारे॒सा, गमधनिसां' इस प्रकार वक्र चलन के बिना ऋषभ का प्रयोग कभी नहीं किया जाता, किंतु सीधे आरोह में ऋषभ वर्ज्य रहता है । मारवा में 'मधसां' लिए जाते हैं, किंतु पूरिया अथवा सोहनी में इनका प्रयोग यदा–कदा ही होता है । मारवा का गांभीर्य और उसकी आत्मा प्रधानतया 'गम' और 'ध' पर अवलंबित रहती है, जबकि पूरिया 'ऩिरे॒ग' और सोहनी 'ध़ऩिसारे॒' पर निर्भर करते हैं । उदाहरणार्थ :-

मारवा : 'धमगमध' ।

पूरिया : 'ऩिरे॒ग, ऩिरे॒सा' ।

सोहनी : 'धनिसांरें॒सां, निधनिध' ।[1]

---

1. चौधरी, बिमलकांत रॉय / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 35

शोधकर्ता द्वारा विषयोचित्त अध्ययन समय यह ज्ञात हुआ कि, पूरिया और मारवा को प्रदर्शित करने के ढंग की तुलना देश और सूरत अथवा मल्लार और सारंग के अंतर से की जा सकती है, प्रधानतया ऋषभ, मध्यम और पंचम का प्रयोग दृष्टव्य है । प्रत्येक परिस्थिति में अंतर की रक्षा तभी हो सकती है, जबकि उपर्युक्त राग–जोड़ियों में से प्रथम राग में मीड़ का प्रयोग दूसरे की अपेक्षा अधिक मात्रा में किया जाए ।

पूरिया में मीड़ का स्वच्छंद प्रयोग उसे नौहार वाणी के ध्रुवपद और धमार के अनुकूल बनाता है । तथा मीड़–विहीन सीधे–सादे स्वर मारवा को डागुर–वाणी ध्रुवपदों के अनुकूल बनाते हैं । पूरिया के अपेक्षाकृत मारवा धमार के उपयुक्त किसी भी प्रकार नहीं बैठता ।

कोमल ऋषभ, तीव्र मध्यम तथा अन्य शुद्ध स्वरोंवाले ठाठ को पं. भातखंडे जी ने मारवा नाम दिया है । इस मेल के अंतर्गत अनेक ऐसे राग भी आते हैं, जिनमें विविधता तथा सौंदर्य की दृष्टि से अन्य स्वरों का प्रयोग भी किया जाता है । राग–रागिनी वर्गीकरण के अनुसार इन्हें मुख्य राग हिंदोल की रागिनी तथा उपरागों के अंतर्गत भी सम्मिलित किया जा सकता है ।

आमतौर पर मारवा ठाठ के राग करूण तथा श्रृंगार–रस की अभिव्यक्ति करते हैं, साथ ही सत्व के प्रादुर्भाव द्वारा आत्मोकर्ष में सहायक भी होते हैं । मनुष्य की आत्मा जब परमात्मा से तादत्म्य स्थापित करती है तो उसके फलस्वरूप करूण रस उद्‌भूत होता है, जबकि साधारण तादात्म्य का फल श्रृंगाररस होता है ।

मारवा ठाठ के अंतर्गत अनेक विशिष्ट राग हैं । राग मारवा तथा पूरिया, दोनों षाडव जाति के हैं, किंतु पूरिया का वादी स्वर गांधार और मारवा का ऋषभ है । राग जयन्त की जाति षाडव–संपूर्ण है, इसके आरोह में ऋषभ वर्जित है तथा वक्र करके इसे गाया जाता है । मारवा ठाठ का बसंत औडव–षाडव है, इसके आरोह में ऋषभ तथा पंचम और अवरोह में पंचम वर्जित है । शुद्ध मध्यम का प्रयोग भी आरोह में किया जाता है । इस ठाठ के एक दूसरे बसंत का आरोह तो इसी प्रकार है, किंतु उसका अवरोह संपूर्ण है । बसंत के ये दोनों प्रकार आजकल बहुत कम ही सुनने को मिलते हैं, क्योंकि तानसेन–परंपरा के कुछ ध्रुवपद–गायकों द्वारा ही इनका प्रयोग किया जाता था ।(1)

1. चौधरी, बिरेन्द्रकिशोर रॉय / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 37

सदारंग ने खयाल–गायन के उद्देश्य से एक 'परज–बसंत' का निर्माण किया था, जो उत्तर–भारत में आज भी प्रचलित है । बंगाल प्रांत में हम शुद्ध धैवत का बसंत इस्तेमाल करते हैं, जिसे रबाबी स्वर्गीय मोहम्मद अली खाँ को प्रयोग करते हुए हमने देखा है । वर्तमान काल में स्वर्गीय वज़ीर खाँ के शिष्य उस्ताद अलाउद्दीन खाँ भी इसे बजाते थे । शुद्ध धैवत के बसंत में स्व. मोहम्मदअली खाँ और मरहूम वज़ीर खाँ के नाती खलीफ़ा दबीर खाँ से मैंने अनेक रचनाएँ सीखी हैं । इस मेल का राग सोहनी भी बड़ा मधुर है, जिसमें अनेक ध्रुवपद, होरी तथा ठुमरियों की रचना की गई है । करूण और श्रृंगार, दोनों ही रसों का प्रादुर्भाव इस राग के द्वारा किया जा सकता है ।

विषयोचित्त अध्ययन के बाद शोधार्थी यह निष्कर्ष के तौर पर अपने कलाकारों को कहना चाहूँगी कि, वे मारवा ठाठ के रागों का प्रदर्शन करने में अपनी वृत्ति अधिकाधिक लगाएँ, जिनकी ओर से आज अनेक संगीतज्ञ उदासीन से हैं । मारवा ठाठ अपने गांभीर्य से हमारी उन भावनाओं को उद्वेलित करता है, जिससे मानव–हृदय को अत्यधिक आनंद प्राप्त होकर मनुष्य और ईश्वर के बीच का संबंध दृढ़ होता है ।

4.2 मारवा थाट तथा राग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय संगीत में रागों का विकास एक अत्यन्त आश्चर्य का विषय है । जब कि अरब के संगीतज्ञ मुक़ामों के बीजगणित में व्यस्त रहे तथा यूनानी स्वरों के भौतिक तत्त्वों में मग्न रहे, हमारे यहाँ ग्रामों से रागों का जन्म हो चुका था । भारत के अतिरिक्त अन्य सभ्य सांगीतिक देशों में संगीत का विश्लेषण भावपक्ष से विलग होकर हुआ । भारत में संगीत में भावपक्ष को प्रधान माना गया । इसी लिए हमारे यहाँ राग संगीत अभी पूर्ण रूप से जीवित है । इसी कारण संगीत के भौतिक तत्त्वों के समन्वय से हारमनी (Harmony)की चेष्टा भारत में कदापि न हुई । Tempered Scale तथा हारमनी (Harmony)में वैज्ञानिक विचित्रता तथा तात्कालिक प्रभाव अवश्य है । क्योंकि ये संगीत की प्रयोगशाला (Laboratory) में बनी हुई आधुनिक औषधियाँ हैं, परंतु इनका प्रभाव भविष्य के राज्य तक विस्तृत नहीं है । भारतीय राग कालजयी है, क्योंकि मनुष्य के अवचेतन मन में इसका जन्म हुआ और भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं से इसका सम्बन्ध अटूट रहा है ।

हमारे यहाँ संगीत-जगत् के कुछ विचारशील व्यक्ति 'षड्ज-पंचम-भाव' तथा 'कुतप विन्यास' (Orchestra of Bharat) में हारमनी (Harmony)के बीज को ढूँढ़ते हैं । सिद्धांततः इस मत से हमारा विरोध नहीं, क्योंकि व्यापक उक्तियों में भूल की संभावना कम रहती है । संकीर्णतर विचारधारा तथा विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :-

१. राग-संगीत में विश्लेषण तथा समन्वय सदैव मानव-भावनाओं पर अपेक्षित रहा है ।

२. हारमनी (Harmony), यूनानी युग से अब तक भौतिक विज्ञान (Physics) के सिद्धांतों पर आधारित रही है ।

ग्राम तथा मूर्च्छना भारतीय रागों की बुनियाद समझी जा सकती है । इसलिए भारत के सर्वकाल के जनप्रिय राग वही हैं, जिनके व्यवहृत स्वरों में अधिक-से-अधिक 'षड्ज-पंचम' का संबंध रह सका, जैसे अर्वाचीन काफी, भैरवी, खमाज, बिलावल, आसावरी इत्यादि । इन पर आश्रित रागों पर भी यही नियम लागू होता है ।[(1)]

भावराज्य में विचरण करनेवाले भारतीय संगीतज्ञों ने षड्ज-पंचम के विरोधाभास पर भी रागों की सृष्टि की । कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे रागों में वादी-संवादी के अतिरिक्त अन्य स्वर षड्ज-पंचम-भाव पर अपेक्षित नहीं रहे । परंतु वादी-संवादी स्वरों मेंषड्ज-पंचम-भाव का होना बाध्यतामूलक रहा ।

ऐसे कृत्रिम रागों के उच्चासन पर मारवा अधिष्ठित है । मारवा ठाठ (गमनश्रम मेल) में दो विकृत स्वर प्रयोग में आते हैं, कोमल ऋषभ तथा तीव्र मध्यम । यथार्थ में कोमल तथा तीव्र का अर्थ जो हम इस समय समझते हैं, वह प्राचीन युग में नहीं था, अन्यथा राग मारवा, जिसमें कोमल ऋषभ तथा शुद्ध धैवत का संवाद है ।

मारवा 'मालवा' का अपभ्रंश है । मालवा की सभ्यता सिंध घाटी-सभ्यता के समकालीन (Chalolcithic) युग की है । यह प्रदेश गणतांत्रिकता के कारण प्रख्यात हो चुका था । ऐतिहासिकों का मत है कि यहीं के निवासियों ने भारत से हजारों मील पूर्व बृहत्तर भारत में मलय की सभ्यता की नीवँ डाली ।

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 6

संगीत–विद्वानों ने मालवा, मालविका, मालवपंचम, मालवकेसरी, मालवगौड, मालवकौशिक, मालवश्री आदि क्लिष्ट रागों की सृष्टि की । मालय या मारवा का रूप अपरिमार्जित अवस्था में क्या था, यह बताना इस समय असंभव है; जैसे – भैरवी, पुलिंदिका, सर्वरी, सौराष्ट्र, बंगाल, कर्णाट, तिलंग आदि के बारे में अनिश्चित है । परंतु शास्त्रकारों ने रागलक्षण के यंत्र में मारवा को रखकर जो रूप दिया, उसमें काफी मतभेद की सृष्टि हुई । राग भी कठिन हो गया । क्लिष्ट शब्द से यह तात्पर्य है कि शुद्ध स्वरों के आपस के संबंध के अतिरिक्त और कोई भी स्वर–संगति (Pattern) अप्राकृत हो जाती है तथा क्लिष्ट भी । इस प्रकार साम, रे॒ध स्वरसंगति स्वाभाविक तथा रोचक नहीं है । मतंग के समय से अर्वाचीन काल तक हम इस बात का प्रमाण पाते हैं कि देशी रागों को नियम के बंधन में लाने की चेष्टा अवश्य हुई, लेकिन प्रकृति की गोद में पले हुए ये राग विधि–निषेधों को जब भी मौका मिला तभी तोड़ते रहे । जैसे – मान लीजिए, मालश्री राग ने चार स्वरों से जन्म लिया, परंतु अहोबल के समय तक इसमें छह स्वर सम्मिलित हुए । आजकल तो कुछ बंदिशों में सातों स्वर मिलते हैं । जिससे प्रतीत होता है कि समय के प्रवाह के साथ राग की गति क्लिष्ट पथ को छोड़कर सरलता को स्वयं ढूँढ़ लेती है ।

मुक्त रूप में एक मालवा नाम सर्वप्रथम हम 'बृहदेशी' में पाते हैं । मतंगने मालव तथा मालवी पंचमी को टक्ककैशिक की भाषा बताया है ।

मकरंदकार नारद ने (संभवतः १०००) संपूर्ण राग मालवी का उल्लेख किया है । स्वामी प्रज्ञानानदजी के मतानुसार पंचमसंहिताकार नारद ने मालव की प्रथम जनक राग के रूप में कल्पना की ।

'संगीत–रत्नाकर' (१४ शतक) के अनुसार टक्ककैशिक की दो भाषाओं में से मारवा एक थी । मालवी टक्क की २१ भाषाओं में से एक थी । इसके अतिरिक्त मालव कैशिक तथा मालव पंचम, वेसरा राग तथा जनक राग थे । मालववेसरी, मालवरूपा, मालवकैशिक की भाषाएँ थीं । इसके अतिरिक्त भिन्नषड्ज की चार विभाषाओं में भी मारवा नाम आता है । मालवश्री उस समय (१४ शतक) का एक प्रसिद्ध रागांग राग माना गया है ।

लोचन की 'रागतरंगिणी' में मारू (संभवतः मारवा) तथा मालवकैशिक को कर्णाट (नि) मेल में पाते हैं, जो कि हमारे खमाज ठाठ के समान था । पूरिया यमन मेल(म) का राग था । लोचन ने मालवगौरी मेल (भैरव ठाठ) का राग माना है ।

सोमनाथ–कृत 'राग–विबोध' (१६४०) में मारवा बसंत तथा भैरव (रे, ध, नि) का जन्य राग है । मालव गौड़ (रे, ध) एक स्वतंत्र मेल है । मालश्री राग (ग नि) का जन्य राग है ।

'संगीत–दर्पण' (१६२५) में मालवी का उल्लेख है और यह श्री राग की भार्या मानी गई है । एक दूसरी मालवी भी इसी राग में पाते हैं, जो कि पंचमभार्या बताई गई है ।

१४ शतक में शार्ङ्गधर–पद्धति पर लिखित 'रागार्णव' में केवल मालवश्री का उल्लेख मिलता है – मल्लाराश्रित रागों के साथ हनुमन् मत से जैसा कि दामोदर तथा लोचन ने उद्धृत किया है मालविका, मालश्री श्री राग की भार्याएँ हैं, परंतु राग–रूप वर्णन में कहीं–कहीं इसका व्यतिक्रम मिलता है; जैसे–

१. ऋतुपति मालोआ ।

२. नितंबिनी चुम्बितवक्रपद्मः शुकध्युतिः कुण्डलबानप्रमतः,
संकेतशालां प्रविशन् प्रदोषे मालाधरो मालवराग एषः,

३. पीनस्तनी शुभ्रविलासनेत्रा नितंबबिंब प्रतिबद्धकांची,
मुखारविंद सुरगीतरम्या नृत्यानुगा मालविका प्रवीणा ।[1]

'संगीत–पारिजात' (१७ शतक) में 'मारू' नाम के संपूर्ण राग (ग नि) का उल्लेख है (श्लोक ४१४) । मालवगौल भैरव ठाठ में है । तथा मालव (श्लोक ४०३) कोमल ऋषभ, धैवत का राग है । मध्यम शुद्ध है । मालवश्री ऋषभ वर्जित षाडव राग है ।

पुंडरीक– कृत 'सद्रागचंद्रोदय' में (१७ शतक) मालव, मालवगौड मेल का राग माना गया है (रे ध) । इसी मेल में मारवा राग का पृथक् उल्लेख भी है । मालवश्री, श्री मेल (ग नि) का जन्य राग है । राग–अध्याय में मालव को श्री राग का पुत्र भी माना गया है । 'रागमंजरी' में 'मारू' एक गौड़ी मेल का राग (रे ध) भी बताया गया है । मालवकैशिक मेल में (ग नि) मालवकैशिक

1. गोस्वामी, जी. एन. / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 11

तथा मालश्री का भी उल्लेख है । मालव राग के आधार पर एक फारसी राग 'मुसलीक' का भी नाम इस पुस्तक में किया गया है ।

मालवानिवासी भावभट्ट (१७ शतक)ने 'अनूपविलास' में मालवश्री, मालवकैशिक तथा मालवी का उल्लेख किया है । रामामात्य (१६ शतक), 'स्वरमेलकलानिधि' में मालवश्री तथा मालवगौड के अतिरिक्त, मालव नाम का पृथक उल्लेख कहीं नहीं किया गया है ।

सोमनाथ-कृत 'राग-विबोध' (१७ शतक) में भी केवल मालवगौड तथा मालवश्री का ही उल्लेख है ।

'चतुर्दंडिप्रकाशिका' (१७ शतक) में मालव से संबंधित केवल मालवश्री ही रह गई है ।

तुलाजीकृत 'संगीतसारामृत' (१८ शतक) में मालवगौडी मेल (रे ध) में मालवी तथा श्री मेल में (ग नि) मालवश्री पाते हैं ।

कर्णाटक-संगीत में इस समय मालवी एक राग अवश्य है, परंतु वह है खमाज ठाठ में तथा मालवश्री काफी ठाठ में ।

ऊपर तथ्यों से हमें यह ज्ञात होता है कि मारवा, मालवा, मालविका, मालवी तथा मालव सभी का मूल एक है ।

आधुनिक मारवा (रे म), मालवी (रे म ध) तथा मालीगौरा (रे म ध ध) से प्राचीन मालव, मालविका या मालवगौड बहुत ही पृथक थे । पूर्वी के बारे में हम देख चुके हैं कि तीव्र मध्यम का प्रयोग इस्लाम की सभ्यता के विकास के साथ हुआ । इन्हीं दिनों भारत में षड्ज तथा मध्यम-ग्रामों का मिश्रण हो रहा था, जिसके कारण विकृत पंचम को भी लोग मानने लगे । काल के प्रवाह तथा विदेशी प्रभाव से इसी विकृत पंचम को लोग तीव्र मध्यम कहने लगे । खयालियों में श्रुति की आवश्यकता तो 'खतरा मोल लेना है।' इसलिए यह अति तीव्र मध्यम हमारे विकृत स्वर-सप्तक की शोभा बढ़ाने लगा । जैसा पहले कहा जा चुका है कि मारवा की भारतीयता पर किसी का घोर संदेह होना अनुचित नहीं है - क्योंकि इसमें कोमल ऋषभ तथा शुद्ध धैवत का संवाद हमारे षड्ज-पंचम-भाव के विरुद्ध है । किंतु ऊपरी तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि मालव तथा मालविका, दोनों रागों के प्राचीन रूप में यह व्यतिक्रम नहीं हुआ ।

शोधार्थी द्वारा मारवा थाट का अध्ययन करते समय यह ज्ञात हुआ कि, विदेशी प्रभाव से ही ऐसा विपर्यय होना संभव हुआ है । इस नए रूप में प्रबल धैवत के साथ मारवा फिर भी खयालियों में अब तक प्रचलित है, परंतु मालवी तो लुप्त हो चुकी है । प्राय: एक प्रकार का राग पूरिया गांधार तथा निषाद के संवाद के कारण अब भी रूचिकर तथा प्रचलित है । पूरिया में कोमल ऋषभ से समता रखने के लिए धैवत का प्रयोग करते हैं ।

साधारणत: तंत्रकार ऋषभ–पंचम–भाव के अतिरिक्त और स्वरों के संबंध को भी व्यावहारिक रूप में एकबारगी पाते हैं, इसलिए हम तंत्रकारों के यहाँ मारवा का प्रचार बहुत कम पाते हैं ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने पर मारवा में व्यवहृत स्वरों की कंपन–संख्या में निष्पत्ति इस प्रकार होगी :–

सा	रे	ग	म	ध	नि
		निष्पत्ति –			
१	१.१०	१.२५	१.४३२	१.६२५	१.८७५
		लघु X।०००			
०	२५१	९६९	१५७४	२१०८	२७३० [1]

स्वर–संगति (Pattern) की रंजकता प्रयोग पर आधारित है, परंतु नियम के बाहर कदापि नहीं । मारवा में ऋषभ तथा धैवत या ऋषभ–मध्यम का संबंध रागवाचक है । स्वरों की कंपन–संख्या में निष्पत्ति (Ratio) निर्धारित करने में इसी बात पर ध्यान रखा गया है ।

मारवा राग में एक प्रकार का रूखापन है, क्यों ? विचार कीजिए कि वृंदावनी सारंग की आरोही तथा अवरोहो गाएं जा रही है, कुछ देर के बाद कोमल ऋषभ पर मिला हुआ एक तानपूरा बजाना प्रारंभ किया । इस प्रकार राग मारवा का रूप दिखाई देगा, इससे समझ सकते हैं कि वृंदावनी सारंग का दोपहर का रूखापन क्यों मारवा में दिखाई देता है ।

संभवत: इसी कारण विशेषकर किराना–गायकी में मारवा में 'सा' का प्रयोग बहुत होता है, जिससे कि वृंदावनी समाहित दोपहर का रौद्रताप मन पर प्रभाव डालता है । इसलिए हम इस सिद्धांत पर पहुँचते हैं कि मारवा रौद्ररस–प्रधान राग है, तथा मालवी, जो कि पूर्वी ठाठ का राग है,

1. गोस्वामी, जी. एन. / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 12

करूण रसप्रधान है । यद्यपि मारवा राग–परिवार का प्रभाव प्राचीन युग में कुछ और ही था, किंतु समय की गति के साथ मारवा–परिवार तथा मानव–मन, दोनों का परिवर्तन हुआ है । संभवतः यह अनित्यता ही मानवसृष्ट कला है ।

4.3 मारवा तथा उसके समप्राकृतिक राग

मारवा एक आधुनिक राग कहा जा सकता है क्योंकि प्राचीन ग्रंथों में जहाँ कहीं भी इसका कुछ वर्णन मिलता है, वहाँ तीव्र मध्यम व तीव्र धैवत का प्रयोग नहीं बताया गया । अतः इससे यही अभिप्राय निकाल सकते हैं कि हमारा प्रचलित मारवा राग का स्वरूप नवीन है तथा यह लोकप्रिय भी है । इस राग में कोमल ऋषभ, शुद्ध धैवत तथा तीव्र मध्यम स्वरों का प्रयोग होता है तथा अन्य सब शुद्ध स्वर लगते हैं । पंचम स्वर बिलकुल वर्ज्य होने से इस राग की जाति षाडव–षाडव है । यह सायंकालीन संधिप्रकाश राग है ।

मारवा राग के वादी–संवादी स्वरों के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है । साधारणतया किसी गायक अथवा वादक से इस राग का वादी स्वर पूछा जाए तो वह शुद्ध धैवत ही बताएँगे – परंतु इसके विपरीत वह इसका गायन–समय सायंकाल ही मानते हैं । उनके इस मत को यदि स्वीकार करें तो हमारी संगीत–पद्धति के नियमों का उल्लंघन होता है, क्योंकि जिस राग का वादी स्वर उत्तरांग में हो, उसका गायन व वादन भी दिन के उत्तर–अंग में होना चाहिए और जिसका वादी स्वर पूर्वांग में हो, उसका गायन–समय भी पूर्वांग में होना चाहिए । संध्याकाल के समय धैवत का वादित्व होना आश्चर्यजनक ही प्रतीत होता है और वह यथार्थ भी है । मारवा के संपूर्ण गायन अथवा वादन में स्वरों का झुकाव धैवत की ओर स्वतः हो जाता है, संभवतः यही कारण है कि उसको वादी मानने की प्रवृत्ति हमारे गायकों व वादकों में पाई जाती है । किंतु यह सब होते हुए भी हमारे विचार से अपनी पद्धति के नियमों के अनुकूल चलना अधिक उचित होगा, अतः यदि हम इस राग को सायंगेयत्व प्रदान करते हैं तो ऋषभ को वादी और धैवत को संवादी मानना ही उचित होगा । मारवा राग में कोई–कोई षड्ज वादी माननेवाले भी पाए जाते हैं, परंतु मध्य–षड्ज का वादित्व जहाँ तक हो सके प्रयोग टाल देना चाहिए ।

मारवा राग के पूरे गायन में इसके प्राण रे ग ध स्वरों में ही रहते हैं । रे ध स्वरों का संवाद इस राग का जीवभूत अंग ही बना हुआ है । धैवत वैचित्र्यदायक और बड़ा (दीर्ध) स्वर मानना चाहिए । पूर्वांग प्रधान होने से धैवत और निषाद दोनों स्वर तो इस राग में चमक नहीं सकते, अतः निषाद का प्रकाश इस राग में बिलकुल नहीं पड़ता । इस राग में तीव्र धैवत एक अपना अनोखा ही स्थान ग्रहण करता है, उसको जितना शीघ्र राग में लगाया जाए, उतनी ही जल्दी राग-स्वरूप निखरता है । कोई-कोई तो इस राग का गायन तीव्र धैवत से ही आरंभ करते हैं और वास्तव में ऐसा करने से परिणाम बिलकुल ही स्वतंत्र होता है ।[(1)]

इस राग का चलन अधिकतर मध्य-सप्तक में ही खुलकर होता है । तार-सप्तक का प्रयोग बहुत ही सीमित होता है और मंद्र-सप्तक में जाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रहती । राग के उत्तरांग में आरोह की तानों में निषाद स्वर न लेकर 'म ध सां' ऐसा किया हुआ दृष्टिगोचर होता है । मध्य-सप्तक में ही राग की सब खूबी है, मंद्र निषाद का प्रयोग ऩि रे गम, धम गरे, गम, गरे सा - इस तरह से प्रचार में दिखाई देता है, परंतु मध्य-स्थान में निषाद अधिकतर छोड़ा हुआ ही दिखाई देता है । इस राग के अवरोह में ऋषभ का वक्रत्व मानना अधिक उचित होगा, क्योंकि अवरोह की तानों में ध, म गरे, ग म ध, म ग रे, म ग रे सा, ग, म ध, नि ध म गरे, ग म ग रे, ग रे, सा, इस प्रकार बहुधा ऋषभ से ये तानें गांधार की ओर लौटती हुई दिखाई देती हैं, फिर यदि एकदम जाकर षड्ज से इस राग में न मिला जाए तो राग-सौंदर्य भी तो बढ़ता है - यही कारण है कि ऋषभ स्वर का वक्रत्व मानना ही अधिक न्याय संगत है । ऋषभ तक पहुँचकर पीछे घूमने का परिणाम कुछ विलक्षण ही होता है ।

शोधकर्ताने विषयोचित्त संशोधन समय यह ज्ञात हुआ कि, मारवा राग में अधिकतर गायक व वादक मंद्र-सप्तक में स्वरविस्तार नहीं करते, क्योंकि ऐसा करने से राग-स्वरूप बदलने का भय रहता है । मंद्र-स्थान में अधिक तानें भी नहीं ली जातीं, बीच-बीच में रे ऩि ध़, म ध़ सा, रे ग, म ध म ग रे, गम गरे सा, ऐसा करेंगे, परंतु अधिक देर तक मंद्र-स्थान में विचरण नहीं करेंगे, क्योंकि उसमें विशेष विचित्रता नहीं है, और फिर राग का वातावरण बदलकर पूरिया का भास उत्पन्न होने

1. सूरी, उर्मिला / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 13

का भय जो बना रहेगा । मारवा राग में मीड़ और नक्काशी का काम शोभायमान नहीं प्रतीत होता, क्योंकि यह चंचल प्रकृति का राग है और द्रुत गति में गाए जाने से ही अच्छा लगता है । इस राग में द्रुत गतें और छोटे खयाल अधिकतर गाए-बजाए जाते हैं । इस राग का गायन स्पष्ट और खड़े स्वरों का है । ध, म ग रे, ग म ग रे ये दो टुकड़े इस राग के जीवभूत अंग हैं, केवल इतने स्वरों को सुनकर ही मारवा राग शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है । मारवा राग गाते समय तार-षड्ज की ओर अधिक बार न जाया जाए तो अधिक अच्छा है, क्योंकि ऐसा करने से राग का सायंगेयत्व बिगड़ता है । तार-षड्ज स्वर तो रात्रि के अंतिम प्रहर में अधिक चमकता है, परंतु इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम उसका प्रयोग बिलकूल भी नहीं कर सकते, जहाँ तक हो सके तार-सप्तक की ओर जाते हुए यदि हम नि रें नि ध, म ग रे इस प्रकार लें तो स्वरूप अधिक अच्छा लगेगा ।

इस राग में खड़े स्वरों के प्रयोग को देखकर कुछ लोगों का यह कहना है कि यह राग वीर-रस का उत्पादक है, परंतु इस विषय पर कोई उचित प्रमाण देना कठिन है-और केवल कल्पना के आधार पर नहीं कहा जा सकता कि इस राग-गायन के द्वारा कौनसे रस की सृष्टि होती है। किसी स्वर-विशेष का प्रभाव कुछ प्राणी पर विशेष होगा, यह तो एक बहुत ही टेढ़ी समस्या है - अतः इस विषय के निर्णय के लिए सभी गुणीजनों को पूर्ण रूपेण स्वतंत्रता ही देना उचित है ।

मारवा राग के उपर्युक्त अध्ययन द्वारा यह प्रतीत होता है कि यह हिंडोल, सोहनी और पूरिया के निकट का राग है । अतः इस राग के स्वरूप को भलीभाँति अपने मस्तिष्क में बिठाने के लिए इन रागों के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन बहुत ही अनिवार्य है ।

❖ मारवा और हिंडोल

मारवा और हिंडोल राग एक-दूसरे के निकट होते हुए भी अपनी कुछ व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण एक-दूसरे से बहुत दूर हैं । इन दोनों में भिन्नताएँ समानताओं से कहीं अधिक हैं ।

मारवा अपने ठाठ का जनक राग है, परंतु हिंडोल कल्याण ठाठ का जन्य राग माना गया है । मारवा एक आधुनिक राग है, परंतु हिंडोल बहुत प्राचीन राग है, क्योंकि राग-रागिनी वर्गीकरण में उसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है । मारवा षाडव जाति का राग है, जबकि हिंडोल औडव जाति का

राग । दोनों रागों के गायन समय में भी अंतर है, क्योंकि दोनों के वादी–संवादी में अंतर है । मारवा का वादी स्वर ऋषभ तथा संवादी धैवत है और हिंडोल का वादी स्वर धैवत तथा संवादी गांधार है । मारवा सायंकालीन संधिप्रकाश राग है, जब कि हिंडोल का गायन–समय रात्रि का अंतिम प्रहर माना गया है परंतु फिर भी हिंडोल को कोई–कोई विद्वान प्रातःकाल का मारवा बताते हैं ।

शोधकर्ता के अनुसार यह कारण संभवतः यह है कि हिंडोल उत्तरांग–प्रधान राग है और उसका वादी स्वर धैवत है । पूर्वांग में तो मारवा हिंडोल से सर्वदा ही पृथक् रहता है, क्योंकि कोमल ऋषभ का प्रयोग, जो कि उसका वादी स्वर है, इसका तनिक भी भास नहीं होने देता, कि हिंडोल नाम का कोई इसका समप्राकृतिक राग हो भी सकता है । परंतु उत्तरांग में मारवा का बड़ भाग हिंडोल के समान दिखाई देता है, क्योंकि इन दोनों रागों में 'ध, म ग, म ध' ये स्वर बड़े ही महत्त्व के हैं, और फिर दोनों रागों में पंचम स्वर वर्जित भी है । मारवा के उत्तरांग में आरोह की तानों में निषाद स्वर न लेकर 'म ध सां' ऐसा किया हुआ दिखाई देगा और ऐसा ही कृत्य हिंडोल में भी दिखाई देता है, परंतु मंद्र निषाद से जब 'ऩि रे॒ ग म, ध म ग रे, ग म ग रे॒'' इस प्रकार स्वर लेते हैं तो मारवा का स्वरूप हिंडोल से बिलकुल पृथक् होकर हमारे सामने आ जाता है ।

इसके अतिरिक्त हिंडोल में ली गई – 'ग सा' स्वरों की विशिष्ट संगति मारवा में कदापि नहीं आएगी । कुछ गुणीजनों का विचार है कि ग, म ध सां, ऐसे स्वर यदि इन दोनों रागों में आ भी सकते हैं तो वे प्रायः हिंडोल में ही अधिक बार आएँगे । मारवा में अधिकतर तार–षड्ज के आस–पास घूमकर लौट आते हैं और मध्य–सप्तक में अधिक विचरण करते हुए – 'ध, म ग रे॒, ग म ग रे॒, सा, सा, रे॒, ग म ध, म ध, नि ध, म ध म ग रे॒, ऩि ध़, म ध़ सा, ऩि रे॒ ग म, ध म ग रे॒, ग म ध म ग म ग, रे॒, सा' इस प्रकार मध्य–षड्ज से आकर मिल जाते हैं । परंतु तार–षड्ज हिंडोल में एक विचित्रता उत्पन्न करनेवाला स्वर है; जैसे – सां, ध सां, म ध सां, ग ग म ध सां, सां नि ध, म ध म ग, म ध सां, नि ध म ध सां, सां नि ध, म ग म ध सां ।'(1)

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 15

इस प्रकार का स्वर–प्रयोग मारवा में कभी भी दृष्टिगोचर नहीं हो सकेगा । मारवा का आरोह मंद्र के निषाद से आरंभ होता है; जैसे – नि़ रे॒ ग म ध......... परंतु हिंडोल का आरोह मध्य–सप्तक के षड्ज से आरंभ होता है; जैसे – सा ग म ध....... अतः कुछ समानताएँ होते हुए भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये राग एक–दूसरे से नितांत भिन्न है ।

❖ मारवा और पूरिया

मारवा राग अपने ठाठ का जनक राग है, परंतु पूरिया मारवा ठाठ का जन्य राग है । दोनों रागों में कोमल ऋषभ, तीव्र मध्यम और शुद्ध धैवत का प्रयोग सर्वमान्य है । दोनों ही में पंचम पूर्णतः वर्जित है । दोनों ही आधुनिक राग प्रतीत होते हैं । परंतु फिर भी दोनों एक–दूसरे के निकटवर्ती राग कहे जाते हैं । दोनों रागों की जाति षाडव–षाडव है तथा दोनों की 'संधिप्रकाश राग' हैं । दोनों ही पूर्वांगवादी राग हैं ।

परंतु समान ठाठ से उत्पन्न होनेवाले इन दोनों रागों में कुछ मूल समानताएँ होते हुए भी अंतर इतने अधिक व स्पष्ट हैं कि दोनों ही अपना पृथक् मार्ग ग्रहण करते हुए दिखाई देते है । इस जनक और जन्य–राग में एक विशेष अंतर प्रकृति का ही है । यदि मुख्य राग मारवा चंचल प्रकृति का है, तो आश्रय राग पूरिया शांत महासागर की तरह गंभीर है, जिसके प्रत्येक स्वर–समुदाय में से एक मंद मुस्कान झलकती हुई प्रतीत होती है ।

विषयोचित्त अध्ययन और वरिष्ठ संगीतज्ञों एवं कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया मारवा राग सुनने के अंतर्गत यह शोधकर्तानि अनुभव किया कि, मारवा राग में 'रे ध' स्वरों का संवाद प्रिय और हृदयग्राही प्रतीत होता है और पूरिया–राग का सारा आनंद 'ग नि' स्वरों पर निर्भर है । मारवा राग में जो स्थानविशेष धैवत ग्रहण करता है, वही स्थान पूरिया राग में निषाद स्वर को स्वतः ही प्राप्त हो जाता है । पूरिया राग में मीड़ तथा नक्काशी का काम राग का सौंदर्य बढ़ाने में सहायक होता है । एक–एक स्वर को बढ़ाकर आराम से राग का स्वर–विस्तार विलंबित–लय में यदि किया जाए तो राग का स्वरूप खुलकर अपनी गांभीर्यपूर्ण छटा श्रोताओं पर डालकर ही रहता है । पूरिया में 'ग, नि़ रे॒ सा' इतना टुकड़ा कुछ ऐसा विलक्षण तथा मुलायम होता है कि उसके कान में पड़ते ही मार्मिकों

का ध्यान उस ओर आकर्षित हो जाता है । इसके बिलकुल विपरित मारवा राग की गौरवता का आभास 'ध, म ग रे, ग म ग रे' इस टुकड़े से शीघ्र ही श्रोताओं को प्राप्त होता है ।

पूरिया राग का संपूर्ण वैचित्र्य मंद्र–सप्तक में उत्पन्न होता है, परंतु मारवा का चलन मुख्यत: मध्य–सप्तक में ही होता है । पूरिया राग में निषाद स्वर पर अभ्यासमूलक बहुत्व दिखाया जाता है; जैसे – म ग रे सा, ऩि ध़ ऩि, रे सा, ऩि, ऩि रे ग, ऩि रे सा, ऩि ऩि, म़ ग़, म़ ध़, ऩि, रे सा, ऩि, रे ग म ग, रे ग, म रे ग, ऩि ऩि रे ग, म ग रे सा............।[1]

निषाद और गांधार स्वरों पर विशेष रूप से न्यास किया जाता है और यही पूरिय राग के मुख्य स्वर हैं, परंतु मारवा राग में ऋषभ और धैवत विश्रांति के स्वर माने गए हैं, और इन्हीं का अभ्यासमूलक बहुत्व राग में दिखाया जाता है; जैसे मारवा में ऋषभ ।

धम ग रे, गम ध म गरे, गम गरे, सा, ऩि रे ऩि ध़, म़ ध़ सा, रे, रे, धम गरे, रे गम ध, म ग रे, नि, धम गरे ।

❖ पूरिया में गांधार

ग, ऩि रे सा, ऩि ध़ ऩि, रे ग, म ग, ऩि रे ग, म, म ग, गम रे ग, ऩि रे सा, ऩि ऩि रे ग, गम ध गम ग, रे ग नि म ग, ऩि रे ग.......... ।[2]

कुछ लोग पूरिया राग का ऋषभ अति कोमल तथा मारवा का ठीक कोमल मानते हैं । पूरिया राग में मंद्र–सप्तक का उपयोग अधिक होता है, परंतु मारवा में मंद्र–सप्तक में मध्यम से नीचे उतरने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती । पूरिया यदि मंद्र में अधिक सुन्दर लगता है तो मारवा मध्य–सप्तक में । पूरिया में धैवत द्वारा उत्पन्न होनेवाला अनिष्टकारक और विसंगत परिणाम दूर करने के लिए निषाद और मध्यम की संगत ली जाती है । जैसे – ऩि म़ ग, म़ ध़, रे सा, ऩि ध़ ऩि इत्यादि ।

1. सूरी, उर्मिला / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 16
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 17

❖ मारवा और सोहनी

जिस प्रकार मारवा को हिंडोल और पूरिया से अलग रखने के लिए सचेत होने की आवश्ढ यकता है, उसी भाँति सोहनी से भी अलग रखने के लिए कुशलता चाहिए । मारवा ठाठ का जन्य राग सोहनी भी मारवा के निकट का राग माना जाता है । इसकी जाति औडव-षाडव है, परंतु जाति के बारे में मतभेद है । कोई तो आरोह में ऋषभ और पंचम वर्जित कर औडव-षाडव जाति बताते हैं, परंतु भातखंडे जी ने आरोह में ऋषभ का अल्प प्रयोग बताकर राग-जाति षाडव बताई है । परंतु दोनों ही रागों में पंचम पूर्णरूपेण वर्जित है, यह तो सर्वमान्य है । दोनों ही संधिप्रकाश राग हैं और दोनों रागों में 'ग, म ध, गम गरे' ऐसे स्वर लिए जाते हैं, परंतु दोनों में ही इन स्वरों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से होता है ।

एक ठाठ से उत्पन्न इन दोनों रागों में विभिन्नताएँ समानताओं से कहीं अधिक हैं और यही कारण है कि इन दोनों का स्वरूप एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न है ।[1]

दोनों रागों के वादी-संवादी स्वरों में अंतर है । मारवा राग का वादी स्वर ऋषभ तथा संवादी धैवत है, परंतु सोहनी का वादी स्वर धैवत तथा संवादी गांधार है । यही कारण है कि सोहनी का धैवत मारवा के धैवत की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है । मारवा पूर्वांग-प्रधान राग है, परंतु सोहनी उत्तरांग-प्रधान राग है । मारवा का स्वरूप मध्य-सप्तक में, परंतु सोनी का तार-सप्तक में चमकता है । यद्यपि दोनों ही संधिप्रकाश राग हैं, परंतु मारवा सायंकाल की संधिबेला के समय और सोहनी प्रातःकाल की संधिबेला के समय गाया-बजाया जाता है । दोनों रागों की चंचल प्रकृति अपना अनूठापन लिए हुए है । मारवा की चंचलता कठोर व नीरस प्रतीत होती है, परंतु सोहनी की चंचलता में भी मधुरता झलकती है । मारवा का आरोह मंद्र के निषाद से और सोहनी का मध्य-सप्तक के षड्ज से आरंभ होता है । सोहनी राग में कोई-कोई दोनों माध्यमों का प्रयोग भी मानते हैं और शुद्ध मध्यम के प्रयोग को आगे आनेवाले ललितांग रागों के समय का परिचायक मानते हैं । यद्यपि इस मत के अनुयायी आजकल नहीं के बराबर हैं, किंतु मारवा में केवल तीव्र मध्यम का प्रयोग सर्वमान्य है । मारवा के मध्य सप्तक में निषाद का प्रयोग नहीं के बराबर है, परंतु सोहनी के

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 17

मध्य सप्तक में निषाद का प्रयोग बड़ी रूचि के साथ बार–बार किया जाता है, 'म ध नि सां' ये स्वर सोहनी में बार–बार लिए जाते हैं ।

इन तीनों की भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए कुशल गायक और वादक एक राग में दूसरे राग की छाया लाकर विचित्रता उत्पन्न करते है; जैसे :–

मारवा – ऩि रे॒ गम ध, म गरे॒ ।

पूरिया द्वारा तिरोभाव – गम ध ग ऽ म ऽ ग, ऩि रे॒ ऩि ।

आविर्भाव – नि, धम गरे॒, गम ध, म गरे॒, गरे॒ सा ।

मारवा – ऩि रे॒ गम ध ।

सोहनी द्वारा तिरोभाव – म ध नि सां, रें॒सां, नि ध ।

आविर्भाव – नि रें॒, नि ध, म गरे॒ । [(1)]

जब राग का स्वरूप व वातावरण भलीभाँति प्रतिष्ठित हो जाता है, तब यह आर्विभाव–तिरोभाव की क्रिया बहुत ही अल्प प्रमाण में और उचित समय पर गुणीजन द्वारा राग–सौन्दर्य बढ़ाते हैं ।

इस तरह से मारवा थाट के अंतर्गत मारवा राग के समप्रकृतिक राग के बारे में शोधार्थीने गहन अध्ययन द्वारा यह जानकारी प्राप्त कि और मारवा राग उसके समप्रकृतिक रागों से कैसे अलग पड़ता है वह भिन्न भिन्न स्वर संगतियों का अभ्यास किया ।

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / संगीत मारवा थाट अंक / पृ. 18

4.4 मारवा ठाठ के रागों का वर्णन

ऐतिहासिक द्रष्टि से भरत से लेकर अबतक के हर युग के महान विचारकों ने संगीतकला के सिद्धांत पक्ष का अपने योगानुरूप बहुत ही उपयोगी और श्रेष्ठतम विवेचन किया है ।

4.4.1 मारवा थाट के प्रचलित रागों का अध्ययन एवं बंदिशें

4.4.1.1 राग : मारवा

यह राग को मारवा थाट जन्य राग माना है, इसलिए राग मारवा अपने थाट का आश्रेय राग है । ऋषभ कोमल, मध्यम तिव्र एवं अन्य स्वर शुद्ध स्वरों का प्रयोग किया जाता है । आरोह में तार 'सा' पर जाते समय 'नि' वक्र रखते है अथवा तो वर्ज्य कर देते है । जैसे की 'म ध नि ध सां' अथवा 'म ध सां' । पंचम पूर्णतया वर्ज्य होने से जाति षाडव–षाडव होती है । वादी स्वर कोमल रिषभ और संवादी षड्ज माना गया है । राग के नियम अनुसार इन स्वरों में संवाद मान होना चाहिए, जो मारवा में नहीं हैं । राग के स्वरूप को देखते हुए 'रे̱ ध' के अतिरिक्त अन्य स्वरों को वादी–संवादी नहीं माना जा सकता, अतः मारवा के वादी–संवादी को राग नियम का अपवाद माना गया हैं । इसका गायन समय सायंकाल ४ से ७ बजे के बीच माना जाता है, इसलिए इसे सायंकालिन संधिप्रकाश राग कहते है । कोमल ऋषभ का बहुत्व होने के कारण इस राग में षड्ज का महत्व कम है । राग का चलन अधिकतर 'ऩि रे̱' से हुआ करती है । राग पूरिया और सोहनी इसके बहुत समीप है । पूरिया, मारवा और सोहनी में समान स्वर लगते है, किन्तु स्वर–चलन द्वारा इनमें भिन्नता लाई जाती है । राग मारवा में अधिकांशतः मींड नही प्रयोग करते । इसे परमेल प्रवेशक राग भी कहा गया है । कारण यह मारवा से कल्याण थाट के रागों में प्रवेश कराता है ।

मारवा राग एक षाडव प्रकार है, जिस में पंचम स्वर बिलकूल वर्जित है । 'उत्तरी धैवत' 'कोमल धैवत' लगनेवाले संधिप्रकाश रागों में पंचम कदाचित ही वर्जित होता है । इसको एक सायंगेय प्रकार माना गया है ।

मायामालवगौलाच्च मेलाज्जातः सुनामकः ।
मारूवाराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम् ॥
आरोहे रिधवर्ज्यं च पुर्णवक्रावरोहकम् ।[1]

– राग लक्षण

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 239

मारवा में धैवत की ओर स्वतः ही लक्ष्य जाता है । इसलिए उसको वादी मानने की प्रकृति गायक-वादकों में पाई जाती है । मारवा में धैवत का वादित्व आश्र्चर्यजनक दिखाई पड़ता है । यह प्रत्येक मार्मिक विचारक को प्रतित होगा । मारवा में ऋषभ और धैवत की जोड़ी को 'जीवभूत' माना गया है । राग मारवा में धैवत का वर्चस्व ज्यादा होने से और बड़ा स्वर होने से निषाद का अलपत्व उपयोग दिखाई पड़ता है । पूर्वांग प्रबल होने से धैवत और निषाद यह दोनो स्वर नहीं चमक सकते, ऐसा माना जा सकता है और पंचम बिलकूल वर्ज्य है तो मारवा में 'रे ध' स्वरों का संवाद मानना ही उचित रहेगा । पुंडरिक विठ्ठल ने अपनी 'राग माला' में 'मालव' और 'मारवी' ऐसे दो भिन्न प्रकार बताये है । मारवी को शुद्ध भैरव की एक भार्या माना है जिसका वर्णन पंडितजी ने कुछ इस प्रकार दिया है :-

चंद्रास्या दीर्घकेशी अनलगतिनिगा सत्रिकास्ता रिधाभ्याम् ।
हेमाभा दीर्घरूपा बहुविधकुसुमैर्भूषिता स्निग्धनेत्रा ॥
मेवाडस्याग्रजाता मृगशिशुनयनी रक्तवस्त्रं दधाना ।
चेपद्धास्या स्तुवन्ती युधि नृपतिगणान् मारवी सा सदैव ॥[(1)]

– राग माला

शोध दरम्यान गहन अध्ययन के बाद शोधकर्ता को यह ज्ञात हुआ कि, मारवा राग गाते समय कुछ विशेषताएँ है जो ध्यान में रखनी पड़ती है । जिसमें महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि, इस राग के गायन में तिव्र धैवत स्वर के सामने जितना भी रख सको तथा जितनी भी जल्दी रख सको उतना ही अच्छा है । कोई कोई चंट गायक-वादक इस राग का प्रारंभ उस धैवत से ही करते है और इसका परिणाम बिलकूल स्वतंत्र होता है ।

मारवा और हिंडोल बहोत ही नज़दीक के राग माने गये है । दोनो रागों को उचित तरीके से अलग-अलग दिखाना अति आवश्यक माना गया है । मारवा में पहले हिंडोल का 'ग, सां' यह विशिष्ट प्रयोग कभी नहि किया जा सकेगा । गुणी लोगों ने एक ऐसी युक्ति बताते हुए कहा है कि, 'ग, म ध सां' ऐसे स्वर यदि इन दोनो रागों में आ सकते है तो वे प्रायः हिंडोल में भी अधिक बार दिखेगा । मारवा में पंचम वर्ज्य और ऋषभ को वक्र करते है ।

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 240

सोमनाथ के भैरव, वसंत भैरवी और मालवगौड़ यह थाट बहुत निकटवर्ती है । तीनों थाटों में 'सा रे म प ध' यह स्वर शुद्ध माने गये है, अंतर है तो केवल गांधार और निषाद के स्वर में । भैरव और वसंत भैरव थाटों में इतना फर्क है कि भैरव में अन्तर 'ग' है और वसंत भैरव में मृदु 'म' (आगे की श्रुति)(ग) है । मालवगौड़ थाट में मृदु 'सा' (तीव्रतम नि) और मृदु 'म' (तीव्रतम ग) है । अर्वाचीन ग्रंथकारों ने दो–दो 'ग', 'नि' न मानकर केवल अन्तर 'ग' और काकली 'नि' यह दो ही स्वर माने है ।

राग का प्रारंभ कुछ ऐसे कर सकते है । 'सा, रे सा, ग, म ग, रे ग, म ध म ग रे, ग म ग रे सा' अथवा 'ध, म ग रे, ग म ग रे, सा, सा रे रे नि़ ध़, म़ ध़ सा, ध़ सा, रे ग, म ध नि ध म ग, रे, सां, नि ध म ग, ग म ध ग म ग, रे सा, नि नि ध ध म म ग ग, ध ध म म ग ग, म म ग ग, रे ग रे, म ग, रे सा, सा रे सा' । इस राग में अधिक उलझन नहीं है, जगह–ब–जगह ऋषभ का वक्रत्व जब तक दिखाया जाए यह राग प्रसिद्ध और सीधा है, बहोत से गायको को आता है । कोई कोई बहुत ही सुंदर तरीके से प्रस्तुति करता है ।

राग को बढ़ाते हुए आगे उत्तरांग में कुछ इस प्रकार स्वरों का उपयोग कीया जा सकता है । जैसे की 'ग, म ध, सां अथवा ग, म ध म, सां, सां, नि रें सां, सां, सां रें, नि रें, नि ध, म ध, नि ध म ग, ध म ग' अथवा 'ध ध म ग रे, ग म ग रे सा, सा, रे रे सा, म ध सा, रे, ग, म ध सा, रे, ग, म ध, नि ध म ग, रे, ग म ध ग म ग रे, रे सा । सा रे सा । सा, रे ग, म ग, म ध म ग, नि ध म ग, रे ग म ध नि ध, म ग, ध म ग रे, म ग रे, सा, सा रे सा । ग ग म ध म, सां, सां, सां रें सां, सां, रें रें, नि रें नि ध, म ध, रे नि ध, म ध, म ग रे, ग म ग रे सा ।

कोई कोई गायक 'नि रे ग म, नि ध म ग, रे ग म ग रे सा, सा सा रे रे नि़ नि़ ध़ ध़, म़ ध़ सा, ग, म ध म ग, रे, ग म ध ग म ग रे, रे सा, सा रे सा ।'

मारवा की प्रकृति पूरिया जैसी गंभीर नहीं है । कइ गायक उसके खड़े स्वर देखकर यह भी

कहे सकते है की यह राग में 'वीर रस' के गीत अधिक शोभा देंगे ।

इस राग के आरोह में निषाद स्वर अनेक बार वक्र गति से प्रयुक्त होता हुआ दिखाई देता है। मारवा की विशेषता रे, ग, ध स्वरों पर अवलंबित है । जब अवरोह में ऋषभ वक्रगति से प्रयुक्त होता है, तब राग–रूप स्पष्ट होकर दिखाई देने लगता है । भातखंडे–मतानुसार इस राग में मीड़ का काम प्रायः नहीं होता । इस राग के पश्चात् कल्याण ठाठ के रागों में प्रवेश करना सहज–साध्य होता है, इसी लिए इसे 'परेल प्रवेशक' राग भी कहते हैं ।

रिध वादी–संवादी कर, पंचम वर्जित कीन्ह ।

रे कोमल मध्यम कड़ी, राग मारवा चीन्ह ॥

थाट	:–	मारवा
विकृत स्वर	:–	रे॒, म
वर्जित स्वर	:–	प
जाति	:–	षाडव
वादी–संवादी	:–	रे॒, ध
गायन समय	:–	दिन का अंतिम प्रहर
आरोह	:–	सा रे॒ ग म ध नि ध सां
अवरोह	:–	सां नि ध म ग रे॒ सा
पकड़	:–	ध म ग रे॒, ग म ग, रे॒, सा

राग : मारवा : त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : काउ कि रीत कोउ करे सखीरी,
मीत पीहरवा जो जो करीए,
सो सो सब अपने मन की ।

अंतरा : हो अधीन तन मन धन तुमरे,
'सदारंग' पर रंग बरसायों ।

रचनाकार के अनुसार अगर हम शब्दों की ओर देखे तो यह एक 'वियोग रस' के शब्द प्रतीत होते है । लेकिन शोधार्थी के अनुसार देखे तो यह एक श्रृंगार प्रधान रस की ओर दिखाई पड़ता है । पर जब मारवा राग की बात करे तो मारवा राग एक पुरूष प्रधान राग है । इस में खड़े स्वरों का उपयोग किया जाता है और अगर प्रस्तुत बंदिश को देखे तो यह श्रृंगार रस अथवा तो वियोग रस की बंदिश कही जा सकती है । शब्दरचना को ध्यान में रखते हुए यह एक अलग रस उत्पन्न करेगा जब की मारवा राग एक पुरूष प्रधान राग है । इस प्रकार के स्वरों का उपयोग तथा प्रयोग एक मानसिक स्थिति को बयान करता है । पुरूष की मनोस्थिति दिखाई देती है, जैसे ही पुरूष अपनी नीजि जिंदगी में हिम्मतवाला या तो उसके जीवन में दिनबदिन होनेवाली परेशानीयों या समस्याओं का सामना करता है परंतु खड़ा होता है । यह उसकी मानसिक स्थिति (Anxiety) को मारवा राग के खड़े स्वर बयान करता है और इसी वजह से इस राग को पुरूष प्रधान राग माना गया है ऐसा कह सकते है । मारवा राग में बहुत ही सुंदर स्वर संगति 'ध म ग रे', 'ग म ग, रे, सा या तो ध म ध म ग रे, 'नि़ ध़ नि़ रे सा' जो की मारवा राग में अनेक बार प्रयुक्त किया जाता है । यह बंदिश में नायिका का अपने नायक के प्रत्ये समर्पण की भावना स्पष्ट दिखाई देती है । पुरूष प्रधान राग होते हुए भी यह एक नायिका के मन की स्थिति को या तो नायिका के मन में आते विचारों को यह स्पष्ट रूप से बयान करता है और यहीं खुबी यह राग को और भी आकर्षक बनाता है ।

स्थाई (तीनताल)[1]

[सा]नि	नि़	रे	ग	–	ग	[ध]म	ध	नि	ध	–	नि	[ध]म	ध	म	ग
का	उ	कि	री	ऽ	त	को	उ	क	रे	ऽ	स	खी	ऽ	री	ऽ
o				३				x				२			

म	रे	ग	म	ग	रे	सा	ऽ	[ध]म़	–	ध़	–	सा	सा	सा	–
मी	ऽ	त	पि	य	र	वा	ऽ	जो	ऽ	जो	ऽ	क	रि	ए	ऽ
o				३				x				२			

1. भातखंडे, विष्णुनारायण / हिंदुस्तानी संगीत–पद्धति क्रमिक पुस्तक–मालिका (दुसरी पुस्तक)/ पृ. 288

–	–	सा	–	रे	–	सा	सा	ऩि	रे	ग	म	ग	रे	सा	–
ऽ	ऽ	सो	ऽ	सो	ऽ	स	ब	अ	प	ने	ऽ	म	न	की	ऽ
o				३				x				२			

अंतरा

[ध]म	–	ध	सां	–	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां	रें	सां	–
हों	ऽ	अ	धी	ऽ	न	त	न	म	न	ध	न	तु	म	रे	ऽ
o				३				x				२			

नि	नि	रें	–	नि	नि	रें	नि	–	रें	नि	ध	म	ध	म	ग
तु	म	तो	ऽ	मे	ह	र	बा	ऽ	न	स	ब	के	ऽ	ऽ	ऽ
o				३				x				२			

रे	रे	–	ग	–	ग	म	म	ग	ग	म	ग	रे	–	सा	–
स	दा	ऽ	रं	ऽ	ग	प	र	रं	ग	ब	र	सा	ऽ	यो	ऽ।
o				३				x				२			

4.4.1.2 राग : जैत

इस राग को प्रचार में भिन्न–भिन्न नाम दिए गये है । जैसे की जैत, जेत, जैत्र, जयंत, जयत्, जैतकल्याण इत्यादि । जैत राग बिलकूल अप्रसिद्ध अथवा दुर्लभ नहि है, परंतु उसके स्वरूप के संबंध में कुछ–कुछ मतभेद द्रष्टिगत होते है । जैतश्री, जैत और जैतकल्याण यह तीन भिन्न–भिन्न प्रकार माननेवाले है । इनमें से जैतश्री का यथासंगत ही है । जैतकल्याण के नाम से थोड़ा सा थाट का आभास होगा ।

जैतकल्याण कई संगीतज्ञोंने कल्याण थाट में भी मानते है । खाली 'जैत' नाम का राग स्वतंत्र मानकर उसे मारवा थाट में पाया जाता है । जैतकल्याण में मध्यम व निषाद वर्ज्य और वादित्व

पंचम को देते है । कई संगीतज्ञों सिर्फ मध्यम को वर्ज्य करके प्रस्तुति करते है ।

कई संगीतज्ञों द्वारा मध्यम और निषाद दोनों वर्ज्य करते हुए पाए जाते है । ऐसा करने से 'सा रे ग प ध' इतने ही स्वर रह जायेंगे, जो भूपाली और देशकार की छाया पडेगी । इस वजह से अगर दोनों रागों का योग कर दिया जाए तो ठीक होगा अर्थात् भूपाली का उत्तरांग और देशकार का पूर्वांग इनका किसी युक्ति से संयोग होना चाहिए । इसके अतिरिक्त वे शुद्ध कल्याण की 'प ग' संगति भी बीच-बीच में योजित करते हुए पाये जाते है, ऐसा करने से राग का सायंगेयत्व अधिक रहेगा । दो-तीन रागों के दुर्बल अंग लेकर उनमें इच्छित स्वर को वादी करके नवीन राग उत्पन्न करना शास्त्र विरुद्ध नहि हैं । कई संगीतज्ञों के मतानुसार जैतकल्याण के विषय में ऐसा भी कहा है कि जैतकल्याण के आरोह में 'रे ध' वर्ज्य किये जाये तो उसका स्वतंत्र रूप होगा । जिसमें जैतश्री का ढ ंग देखने को मिलता है, परंतु जैतश्री का थाट अलग होने से जैतकल्याण का उसमें मिल जाना संभव नहि है ।

आरोह में ऋषभ वर्जित किया हुआ अनेकबार दिखाई देता है । धैवत यदी वर्जित न माना जाए तो भी यह स्वर जैतकल्याण में बिलकूल असत्यप्राय होता हुआ जरूर दिखेगा । कोई गायक तो उसे आरोह में वर्ज्य करते हुए दिखाई पड़ते है ।

जैतकल्याण में वे 'प ध ग, प ध प, रे, सा' यह भाग बहुत सुंदर लगता है । मारवा थाट के पंचम स्वर लगनेवाले अनेक रागों में यह टुकड़ा बहुत ही महत्व रखता है । यह टुकडा वास्तव में विलक्षण लगता है । यह सुननेवाले के मनमें थोड़ी देर के लिए देशकार का रूप अवश्य उत्पन्न होगा । परंतु 'रे रे, सा' भाग खूब जोड़ा जा सकता है । यहाँ तिव्र धैवत का बड़ा डर लगेगा क्योंकि निषाद बिलकूल वर्ज्य पाया गया है और धैवत असत्यप्राय है तो फिर अडचन हो सकती है । धैवत अवरोह में एक झटके में लगाया जाता है । उत्तरांग का नियम संभालकर गाना पड़ता है ।

जैतकल्याण का साधारण चलन या तो विस्तार कुछ इस प्रकार हो सकता है :

सा, ग प रे, सा, सा, रे सा, सा सा ग ग प, प, प ध ग, प, ध प रे, सा, सा सा रे सा, प़, सा, रे सा, ग प, प, ध प रे, सा, सा ग प, प, ग प, प, सां, रें सां, प, सा ग प सां, प, प ध ग, प,

ध प रे, सा, सा रे, सा, प़ सा रे, सा, ग प रे, सा, ध प रे, सा, ग प ध प रे, सा, सा ग प सां, सां, ग प सां, ग प ध प, रे, सा । सा रे ध़ सा, ग प ध प, रे, सा, प़ प़ सा, रे सा, प ग प, ध प, सां, प ध प ग प ध प, रे, सा; ग रे सा, रे सा, सा ग प, ग प, सां, प ध प, ध ध, प, ग प ध प, ग रे, सा ।

विषयोचित राग का अध्ययन करते समय शोधार्थीने यह ज्ञात किया की, जैतकल्याण राग गाते हुए गायकों में अनेकबार उझलनों का सामना करना पड़ता है । कोई मंद्रसप्तक में आरोह करते समय निषाद थोड़ा सा लगाते है, परंतु मध्य सप्तक में वह छोड़ देना पड़ता है ।

जैत राग हम मारवा थाट में मानते है, इसमें भी मध्यम और निषाद वर्जित है; परंतु ऋषभ कोमल है । इसीलिए जैतकल्याण से भी यह भिन्न होगा । जैत राग भिन्न-भिन्न प्रकार से गाया हुआ दिखेगा । जैत में यदि 'म नि' वर्ज्य हुए तो 'सा <u>रे</u> ग प ध सां' यह स्वर रहेंगे । यह राग सायंगेय है और पंचमवादी है । इसीलिए धैवत स्वर बिलकूल गौणत्व पाया जाता है । जगह व जगह रेवा अथवा विभास का आभास होगा, क्योंकि धैवत के दुर्बल्य से ऐसा होना संभव है, परंतु विभास में धैवत कोमल होकर वह वादी है और रेवा में गांधार वादी है । इस वादीभेद से ही यह सब राग पृथक होंगे । रेवा और विभास में धैवत कोमल है और जैत में वह तिव्र है, यह एक स्वतंत्र भेद माना जा सकता है । परंतु धैवत का गौणत्व आने से रेवा और विभास का विचार आयेगा । मारवा थाट में भी एक विभास है, परंतु वह संपूर्ण है । जैत भिन्न-भिन्न प्रकार से गाया हुआ मिलेगा । कोई उसे दोनो ऋषभ से गाते है, तो कोई दोनों ऋषभ व दोनो धैवत लेकर गायेंगे । जैत राग कहीं संपूर्ण गाया हुआ भी दिखेगा और कहीं धैवत वर्जित के साथ भी । अर्थात् मध्यम और निषाद आरोह-अवरोह में लगाया जा सकता है । पूरीया, मारवा तो षाड्व ही है । रागभेद स्पष्ट करने के लिए कोई अवरोह में थोड़े 'म, नि' लगाके उपयोग करते है ।

चतुर पंडित ने इस विषय में अपना मंतव्य कुछ इस प्रकार दिया है, उन्होंने अपना स्वतः का मत कहकर अन्य मतों का संक्षेप में उल्लेख किया है :

मारवामेलने तत्र रागः स्याज्जैत्रनामकः ।

आरोहे चावरोहेऽपि मनिवर्ज्यो गुणिप्रियः ॥

स्याद्वादी पंचमो ह्यत्र संवादी षड्ज ईरितः ।

गानमस्य समीचीनं भवेत्सायं निरंतरम् ॥ (1)

1. भातखंडे, विष्णुनारायण / हिंदुस्तानी संगीत–पद्धति क्रमिक पुस्तक–मालिका (दुसरी पुस्तक)/ पृ. 263

अब निकटवर्ती राग कैसे दूर किया जा सकता है वह देखते है :–

रेवायां मनिवर्ज्यत्वं नूनं मया पुरोदितम् ।

तथैवाऽपि विभासे तदिति स्याच्छंकनं क्वचित् ॥

वादिभेदे रागभेदः प्रस्फुटः सर्वसंमतः ।

गीतवैचित्र्यमेवैतदिति शंका निरर्थिका ॥

तथाप्यत्र समादिष्टं तीव्रमस्य प्रयोजनम् ।

अवरोहे भवेद्येन सौकर्य रागभेदने ॥

मते केषांचिदप्युक्तो जैत्रः कल्याणमेलजः ।

कोमलत्वं रिस्वरस्य भाति मे युक्तिसंगतम् ॥

संत्यन्ये ते मते येषां जैत्रो धैवतवर्जितः ।

पूर्वीमेलेऽपि तद्गानं नियुक्तिं तैः सुरक्तिदम् ।

रिवर्जने भवेत्पूर्व्यां टंकिकायाः समुद्भवः ।

त इत्याहुरनायासं विचार्यं तन्मनीषिभिः ॥(1)

म – नि वर्ज्य 'जैत' प्रकार कुछ इस प्रकार दिखेगा :

जैत – झंपा ताल

रे	प	।	ग	रे	सा	।	सा	रे	।	सा	रे	सा
X												
सा	रे	।	ग	रे	ग	।	प	ग	।	प	ध	ग
सा	ग	।	प	प	सां	।	प	ग	।	ध	प	ग
सा	ग	।	प	ध	प	।	ग	रे	।	ग	रे	सा

अंतरा

प	प	।	सां	ऽ	सां	।	रें	सां	।	गं	रें	सां
सां	रें	।	सां	ऽ	सां	।	प	प	।	ग	प	ग

सा सा । ग प प । सां ऽ । प ध ग

सा ग । प ध प । ग रे । ग रे सा

1. भातखंडे, विष्णुनारायण / हिंदुस्तानी संगीत–पद्धति क्रमिक पुस्तक–मालिका (दुसरी पुस्तक)/ पृ. 263

राग का सायंगेयत्व संभालने में सारी खुबी है । यह औडव प्रकार अधिक सुविधाजनक होगा । जो जैत में थोड़ा सा मध्यम लगाते है वह कुछ इस प्रकार हो सकता है ।

जैत – झंपा ताल

रे ग । रे रे सा । सा ऽ । ग प प

प ऽ । ग प प । प प । प ध ग

रे ग । म ध म । ग ग । रे रे सा

अंतरा

प प । सां ऽ सां । सां ऽ । सां रें सां

सां सां । रें रें सां । सां ऽ । प प ग

सा सा । ग प प । सां ऽ । प ध ग

रे ग । म ध म । ग ग । रे रे सा

जो गायक जैत में दोनों ऋषभ और दोनों धैवत लगाते है वह कुछ इस प्रकार पाया जाएगा ।

रे ग । रे रे सा । सा ऽ । ग प प

प ग । प ऽ प । प ऽ । प ध ग

रे ग । म ध म । ग ग । रे रे सा

अंतरा

प प । सां ऽ सां । सां ऽ । सां रें सां

सां ऽ । सां रें सां । सां ऽ । प प ग [(1)]

कई गायक आरोह में ऋषभ का उपयोग कम करने के लिए कहते है ।

जैत का राग विस्तार कुछ इस प्रकार दिखाया जा सकता है :–

सा, सा, रे ग रे सा, रे रे सा, रे ग, प, प, ध ग, प, प, ध ग, प ध ग, रे ग, ध प ग, रे, सा,

सा रे सा, । रे रे ग रे, ग प, प, ग प ध प, ग रे, प ग, रे सा; रे ग रे सा, प ग रे सा, प, प, सां, प प ग, रे ग, प ध प ग, रे सा । सा ग प ग, प ध ग, ग रे सा, सा रे सा, ग, प, प, प ध ग, प, सां,

1. भातखंडे, विष्णुनारायण / हिंदुस्तानी संगीत–पद्धति क्रमिक पुस्तक–मालिका (दुसरी पुस्तक)/ पृ. 264

प, ध ग, सा ग प, ध ग, रे सा । रे रे सा, ग प ग, रे सा, प प ग प ग, रे सा, रे ग रे सा, ग प, प, प ध ग प, प, सां प, ध ग, रे ग प, ध ग, प ग, रे सा, सा रे सा । प, प, सां, सां, सां रें सां, सां सां, रें सां, प, प ग, रे ग प, सां, प ध ग, सा ग प, ध प ग, ग रे सा, सा रे सा ।

आरोह में ऋषभ कम करने का नियम जैतकल्याण में अधिक उपयोगी होगा । जैत में हो सके तो 'सां, ध, प' यह प्रकार न होने देना चाहिए, क्योंकि वहाँ देशकार का आभास हो सकता है । इस थाट में 'म नि' वर्जित दुसरे राग में होने से जैत का गायन इतना कठीन नहीं होगा । परंतु उत्तरांग अवश्य कुशल है । पूर्वांग नहीं संभाल पाते तो विभास के समान दुर्बल करना पड़ेगा । विभास हटाने के लिए आरोह में बारंबार लगाते है, क्योंकि ऐसा करने से राग का सायंगेयत्व अधिक व्यक्त होगा।

जैतकल्याण और जैत स्पष्ट भिन्न प्रकार माने गए है । इन दोनों में ही 'म नि' वर्ज्य और पंचम वादी है । पंचम के रहने से मारवा, पूरीया तथा इस थाट के अन्य राग जिनमें पंचम वर्जित होता है वह सब दूर होंगे । 'म नि' समूलवर्जित करनेवाला दुसरा राग नहि है । आरोह में ऋषभ रखने से जैतकल्याण में भूपाली, देशकार वगैरह प्रकारों का आभास होना संभव है । जैत में 'सा रे ग प ध' ऐसे स्वर है । इसमें कदाचित 'सा रे ग प' यह रेवा और विभास पास लगेंगे । बीच–बीच में 'सा, ग प, प, प ध ग' ऐसा कर सकते है । सायंगेयत्व रखने का निश्चय होगा तो विभास सहज ही दूर किया जा सकता है । यह करने से भैरव थाट का विभास हम हटा सकेंगे ।

'सा, रे सा, रे ग, रे ग प, प, प ध ग, रे ग प, ग, रे सा' यह टुकडा स्वतंत्र है । जैत के 'रे ध' स्वर 'न तिवर न कोमल' ऐसा कह सकते है ।

क्षेत्रमोहन स्वामी कहते है कि, जयंत अथवा जैत राग षाड्व है और उसमें पंचम वर्ज्य है, और उन्होंने जैत राग का विस्तार कुछ इस प्रकार दिया है :–

'ऩि सा ऩि सा ग म ध नि ध म ग, सा ग रे रे सा, ऩि सा, ऩि सा, सा ऩि ध़ म़ ध़ ऩि सा,

सा, ग म ग, ऩि सा ग, म ग, सा ग रे॒ ग रे॒ सा ।'

बंगाल में कदाचित् यह प्रकार प्रचार में हो सकता है, किन्तु पंचम वर्ज्य नहि होगा । कुछ उर्दू ग्रंथ का जैतकल्याण यमन थाट में माना है, उसमें निषाद वर्ज्य है ।

संगीत रत्नाकर, संगीत–दर्पण, रागविबोध, स्वरमेलकलानिधि, सारामृत, चतुर्दण्डिप्रकाशिका, चन्द्रोदय, रागमाला इत्यादि ग्रंथों में जैत राग दिया नहीं है । कृष्णधन बेनर्जी ने 'जयंत' राग नाम स्वीकार करके उसमें पंचम वर्ज्य मानते है । भावभट्ट पंडित ने अपने ग्रंथ में एक जैतकल्याण कहा है । परंतु उसका लक्षण 'गांधारादिस्तु सम्पूर्णः' इतना ही कहा है ।

Capt. Willard अपने राग–मिश्रण कोष्ठक में जैत का अवयव 'जैतश्री, शुद्ध कल्याण कहा है । 'कल्पद्रुम' में कुछ ऐसा कहा है :

प्रथम प्रहर निस गाइये नव प्रकार कल्याण ।

हेम खेम ऐमन पुनि भूपाली हंमीर ॥

श्याम जैत धरू पूरिया निशा समय यह बीर ।[1]

'नादविनोदकार' जैत का ठाठ यमन मानते है और उस राग में केवल निषाद वर्ज्य माना है । उन्होंने जैतकल्याण का स्वरूप कुछ इस प्रकार दिया है : 'ऩि सा ग, प, ध ध प, ध प प, रे, सा, ऩि ध़ ऩि रे सा, नि ध प, ग ग, ध ग प, रे रे सा । ग ग प प नि सां, नि सां, गं पं गं रें सां, ध ध रें सां, नि ध प, ध ध प ध, ग प रे रे सा ।'

जैत को मुख्यतः कल्याण का अंग देने का व्यवहार अधिक दिखाई पड़ता है । कोई मारवा अंग से गाएगा, कोई पूरिया के अंग से और कोई शुद्ध कल्याण के अंग से गाएगा । 'उत्तरी ऋषभ' लगाकर गाना यद्यपि कुछ मधुर व कठीन है, फिर भी वह संभव है, ऐसा कहना गलत न होगा ।

जैत राग के तीन रूप प्रचार में दिखाई देते हैं । एक स्वरूप तो यह औडुव–औडुव है । म–नि वर्जित किए जाते हैं । दूसरे स्वरूप में किंचित् तीव्र मध्यम लिया जाता है । उसका उठाव सा, गप, ग, रे॒सा, ग, पग रे॒ग, मधमग, रे॒सा हो सकता है । तीसरे स्वरूप में दोनों रे तथा दोनों धैवत प्रयुक्त किए जाते हैं । यह प्रकार मारवा ठाठ के अंतर्गत माना जा सकता है ।

उपरोक्त म–नि वर्जित जैत में 'प ध ग' यह स्वरविन्यास रागवाचक है, इसी प्रकार सा ग तथा सा प की स्वर–संगतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं । जैतकल्याण नामक राग से जैत राग का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि वह कल्याण ठाठ का राग है और वह मारवा ठाठ के अंतर्गत है ।

1. भातखंडे, विष्णुनारायण ⁄ हिंदुस्तानी संगीत–पद्धति क्रमिक पुस्तक–मालिका (दुसरी पुस्तक)⁄ पृ. 268

जबहि मारवा ठाठ सों, मनि सुर दिए निकार ।

रे कोमल, संवाद पस, औड्डव जैत सम्हार ॥

थाट	:–	मारवा
विकृत स्वर	:–	रे
वर्जित स्वर	:–	म, नि
जाति	:–	औड्डव
वादी स्वर	:–	प
संवादी स्वर	:–	सा
गायन समय	:–	सायंकाल
आरोह	:–	सा रे ग प ध प सां
अवरोह	:–	सां प ध प ग रे सा
पकड़	:–	सा, रेसा, रेगप, पधग, रेगप, ग, रेसा

राग जैत : त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : निस दिन तेरे ध्यान धरत हूँ, दाता दयाल पालन हारे ।

अंतरा : तू अनन्त अविनाशी अनादि, निराकार निरगुन गुन राशि, 'रामरंग' के सब विध काज संवारे ।

राग जैत के रसात्मक विवरण के बारे में चर्चा करे तो यह एक कर्णप्रिय राग साबित हुआ है । शोधकर्ताने यह राग के बारे में अध्ययन करते समय यह पाया है कि, यह राग बहुत से भिन्न– भिन्न प्रकार में दिखेगा । कल्याण के अंग का व्यवहार अधिक दिखेगा । रचनाकार के अनुसार इस रचना

या बंदिश के शब्द की ओर ध्यान दे तो यह एक भक्तिरस की बंदिश दिखाई पड़ती है । एक भक्त की अपने प्रभु के पास एक अरज, एक बिनती स्पष्ट दिखाई पड़ती है । एक भक्त की अपने भगवान के प्रति समर्पण की भावना दिखाई देती है । भक्त के जीवन में आती अडचनों को भगवान ने ही दूर किया है । भगवान ने ही रास्ता दिखाया है, इसी अरज से आगे भी भक्त का साथ दे और रास्ता दिखाए, ऐसी प्रभुसे प्रार्थना कर रहा है । प्रभु के गुणगान गाते हुए वह कहेता है कि, प्रभु की लीला अपरंपार है, निराधार है । प्रभु आप ही दिनदयाल हो और आप ही सबके दुःख हरते हो और भक्त को एक सुखमय और आनंदित जीवन प्रदान करते हो । 'रामरंग' ने अपनी भक्ति को इस बंदिश में ढाल दिया है । जैत राग के स्वरों को यह एक भक्तिमय ढंग से इस रचना में दिखाया है । 'रे सा ग रे, प ध ग, रे ग प, ग, रे सा' यह स्वरसंगति कर्णप्रिय साबित हुई है । जो एक भक्त के अपने भगवान के लिए समर्पण की भावना को बखुबी दिखाई पड़ेगा । एक औडव प्रकार का राग होते हुए भी यह एक संपूर्ण भक्ति का माहोल उत्पन्न करने की क्षमता रखता है क्योंकि यह सायंकाल का राग है, तो यह भक्तिरस को अवश्य ही न्याय करेगा, तथा यह राग की स्वरसंगतियाँ यह रस को और भी उपर लेकर जाती है ।

स्थाई [1]

															सा
															नि
सा	ग	–	ग	प	–	प	ध	ग	प	–	प	ग	रे	सा,	सा
स	दि	ऽ	न	ते	ऽ	रो	ध्या	ऽ	न	ऽ	ध	र	त	हूँ,	दा
प	सा	–	सा	प	ध	प	सां	–	प	ध	प	ग	रे	सा,	सा
ऽ	ता	ऽ	द	या	ऽ	ल	पा	ऽ	ल	ऽ	न	हा	ऽ	रे,	नि
३				X				२				0			

अंतरा

प	–	प	सां	–	सां	सां	सां	रें	–	सां	सां	प	ध	प	–

तू	ऽ	अ	न	ऽ	न्त	आ	वि	ना	ऽ	सी	अ	ना	ऽ	दी	ऽ

प	प	–	प	ध	ग	प	प	ग	ग	प	ग	रे॒	–	सां	–
नि	रा	ऽ	का	ऽ	र	नि	र	गु	न	गु	न	रा	ऽ	सी	ऽ

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि भाग–५ / पृ. 303

सा	–	प	सा	–	रे॒	सा	–	प	प	सां	सां	ध	ग	प	प
रा	ऽ	म	रं	ऽ	ग	के	ऽ	स	ब	वि	ध	का	ऽ	ज	सं
o				३				x				२			

ग	रे॒	सा,	सा
वा	ऽ	रे,	नि
o			

4.4.1.3 राग : पूरिया

राग पूरिया मारवा के निकटवर्ती रागों में से एक माना गया है । पूरिया नाम सुनने में आधुनिक और यावनिक लगता है, परंतु है बहुत ही पुराना । पूरिया प्रचलित तथा प्रसिद्ध रागों में माना गया है । पूरिया सीखते या गाते समय बड़े गायक अपने विद्यार्थी का ध्यान पूर्वी और पूरिया के भिन्न भेदों की ओर आकर्षित अवश्य करते है ।

पूर्वी में दोनों मध्यमों का प्रयोग करते है, पूरिया में कोमल मध्यम का संसर्ग बिलकूल निषिद्ध है । पूरिया में पंचम बिलकूल वर्जित है, किन्तु पूर्वी में वह एक अच्छा महत्व का स्वर है । पूरिया और मारवा यह सायंगेय प्रकार है ।

वादी गांधार है और निषाद संवादी है । इस दोनो स्वरों पर इस राग की सारी विचित्रता है । इस राग के 'नि़ सा रे॒ ग म' यह सब पूर्वी के स्वर होने के कारण पूर्वी की तानों से मिल जाने की संभावना रहेती है । इसी वजह से पूर्वी राग गाते हुए कई गायक छोटे छोटे स्वर समुदाय की ऐसी खुबी रखते है की श्रोताओं को राग भेद सहज में दिखाई दे । पूरिया संध्याकालीन राग है । इसीलिए साम को अधिकतर सुनाई देगा । इस समय पंचम छोडनेवाले राग शुरू में मारवा और पूरिया यह दो

राग ही होंगे सायंगेय स्वरूप होकर यह पंचमहीन है । 'ध म ग रे, ग म ग रे सा' यह मारवा की जीवभूत तान है । यह न हो तो प्रसन्नतापूर्वक पूरिया की ओर घूम सकते है । पूरिया बहोत ही प्रसिद्ध है इसी वजह से कई गायक यह राग गाते है ।

म ग रे सा, नि़ ध़ नि़ – यह टुकड़ा कान में पडते ही पूरिया की आशा लगने लगती है । यह राग पूर्वांग वादी होने से इसका संपूर्णतः वैचित्र्य उसी अंग में है । अगर राग पूरिया को संक्षिप्त में देखे तो कुछ ऐसा हो सकता है – 'म ग रे सा, नि़ ध़ नि़, रे सा, नि़, नि़, रे ग, नि़ रे सा, नि़ नि़ म ग म ध रे, सा, नि़, रे ग, म रे ग, नि़ रे सा' ।

पूरिया पूर्वांगवादी राग है, इसका वादी स्वर गांधार है । इस वजह से गांधार का बहुलत्व संभालना जरूरी है । जैसे की – ग, नि़ रे सा, नि़ ध़ नि़, रे ग, म ग, नि़ रे ग, म, म ग, ग म रे ग, नि़ रे सा; नि़, नि़, म ध़, नि़, ग, म ग, ग म ध, ग म ग, रे ग, नि म ग, नि़ रे ग, म ध ग म ग, म ग, ग, नि़ रे सा; इत्यादि । यहाँ गान्धार कितना आगे आया है । अब मारवा – ध म ग रे, ग म ध म ग रे, ग म ग रे, सा, नि़ रे नि़ ध़, म़ ध़, सा, रे, रे, ध म ग रे, रे ग म ध, म ग रे, नि ध म ग रे, ग म ग रे, रे, सा, सा रे सा ।**(1)**

पूरिया में मंद्र सप्तक का उपयोग बहुत ही अच्छा होता है । उस स्थान में गांधार तक उतरना अच्छा द्रष्टिगोचर होता है । मारवा में मध्यम के नीचे जाने की आवश्यकता नहि । मारवा में 'नि़ रे नि़ ध़, म ध़ सा' इस प्रकार से लिया जाता है । पूरिया में धैवत द्वारा उत्पन्न होनेवाले अनिष्टकारक और विसंगत परिणाम दूर करने के लिए निषाद और मध्यम की संगति की जाती है। जैसे की – 'नि़ म़ ग़, म़ ध़, रे सा, नि़ ध़ नि़, रे ग, म ग, सां नि, म ग, रे ग, नि़ रे सा । जिस तरह पूरिया को मारवा से अलग रखने की आवश्यकता है, उसी तरह उसे सोहनी से भी अलग रखने की सावधानी रखना आवश्यक है ।

सोहनी उत्तरांगवादी राग होने से उसका वैचित्र्य उसके अंग में होना उचित ही है, तथापि 'नि ध नि' इस टुकडे का परिणाम कुछ विलक्षण ही होगा, इसमें कोई संशय नहि है । 'सां, नि ध नि, म ग, म ध, नि सां, रें सां ' यह स्वरसंगति पूरा रंग बदल देगी । एक ही ठाठ से स्वरक्रम से, किन्तु अंग भिन्नता से, राग भिनत्व उत्पन्न होना यह हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का महत्वपूर्ण तत्व है ।

पूरिया राग का राग विस्तार कुछ इस तरह से हो सकता है :

'ग, ऩि रे सा, ऩि ध़ ऩि, रे सा, ग, म ग रे सा, ऩि ऩि, रे सा, ऩि, म़ ग़, म़ ध़ ऩि, रे सा, ऩि रे सा । ऩि रे ग, म ग, रे ग, म म ग, रे ग, नि म ग, रे ग, ऩि रे सा । ऩि रे ग ऩि रे सा, ऩि ऩि रे सा, म़ ध़ ऩि रे सा, ध़ ऩि, रे सा, ग, ऩि रे सा, ऩि रे ग म, रे ग, ऩि रे सा । म म ग ग, म ग, रे ग, ग म

1. भातखंडे, विष्णुनारायण / हिंदुस्तानी संगीत–पद्धति क्रमिक पुस्तक–मालिका (दुसरी पुस्तक)/पृ. 249

ध ग म ग, ऩि रे ग म नि म ग, म ग, म रे ग, नि रें नि म ध ग म ग, रे ग, म ध म ग, म ग, रे ग, ऩि रे सा । म़ ध़ ऩि सा रे रे सा सा, ध़ ध़ ऩि सा रे रे सा सा, ऩि रे ग रे ग रे सा सा, ऩि रे ग ग म म ग ग, ग म ध ग म म ग ग, ग म रे ग रे म ग ग, नि नि म ध ग, म ग ग, रे ग म रे ग, रे सा सा, ऩि रे सा ।'

अंतरे का चलन कुछ इस प्रकार हो सकता है :–

'ग ग म ध म सां, सां, नि रें सां, नि रें गं रें सां, नि, रें नि, मं गं, गं मं गं, रें सां, नि नि रें नि म, नि म ग, रे ग म नि म ग, म रे ग, रे सा, ऩि रे सा ।' इस चलन में धैवत की स्थिति दिखाई देती है । सारी खूबी गांधार और निषाद स्वरों पर तथा 'रें नि' और 'नि म' संगति पर है । पहले 'ऩि रे ग, ऩि रे सा; ग, ऩि रे सा; म ग, ऩि रे सा; नि नि म ग, ऩि रे सा; ग म ध ग म ग, ऩि रे सा; रें नि, म ध ग, म ग, ऩि रे सा; ऩि रे ग म ध ग, म ग, ऩि रे सा' ये टुकडे मंद्र–स्थान में राग–विस्तार करते हुए एक मुख्य तत्व यह अपने ध्यान में रखना आवश्यक है । जहाँ तक अपना गला मधुर और स्पष्ट जाए, वहीं तक नीचे उतारना चाहिए ।

भावभट्ट के ग्रंथ राग वर्गीकरण में उन्होंने पूरिया के लिए ''पूर्विकाललितायुक्ता हिंदोलांता तदा भवेत्' वगैरह पूरिया के प्रकार कहे है । यह प्रकार आज के गायकों में ज्यादा प्रचार में है ।

विषयोचित्त राग का अध्ययन करते समय शोधकर्ताने यह जानकारी प्राप्त की है कि, प्रचार में पूरिया दिन की, पूर्व्याकल्याण, पूर्वकल्याण वगैरह नाम बारम्बार सुनाई देंगे । कई गायक 'रात की पूरिया' को गाते समय 'म, ध, नि और ग' यह स्वर तीव्र होकर पंचम स्वर वर्ज्य है । इस राग के स्वरूप के बारे में कोई मतभेद देखने को नहीं मिलते है। 'दिन की पूरिया' के बारे में भिन्न–भिन्न गायकों ने अपने मंतव्य दिये है । कई गायक ने ऐसा मंतव्य दिया है कि एक तीव्र मध्यम से पूर्वी

गाकर उसे ही 'दिन की पूरिया' मानते है और धैवत को तीव्र करने से वहाँ मारवा थाट उत्पन्न होकर कई स्थानों में 'रात की पूरिया' का आभास होगा । पूर्वी में दोनों मध्यम लगाते है इसलिए एक मध्यम का यह प्रकार अलग ही रहेगा ।

प्रचार में जो पूर्वी राग सर्वत्र प्रसिद्ध है, उसे ही 'दिन की पूरिया' समझते है । यह राग सूर्यास्त के पहले ही गाया जाता है । ग्रंथों में जो पूर्व्याकिल्याण नामक प्रकार वर्णित है, उसी का गायको ने हिन्दी नाम 'दिन की पूरिया' रख लिया है । पूर्वकल्याण का आरोह–अवरोह कुछ इस प्रकार होगा – सा, रे ग म प ध नि ध सां । सां नि ध प म ग रे सा ।

जब पूरिया और दिन की पूरिया में फरक समझा जाए तो ऐसे कह सकते है कि पंचम वर्ज्य माने 'पूरिया' और दोनो मध्यम माने 'दिन की पूरिया' होगा । इस प्रकार में ऋषभ तिव्र मिलेगा और 'रात की पूरिया' में कोमल । यह दिन की पूरिया राग में गायक कदाचित गाते हुए मिलेंगे । इसमें ऋषभ स्वर युक्ति से आरोह में टाला जा सकता है ।

दक्षिण की ओर पूर्वकल्याण नाम है, पूरिया नहि, और उत्तर की ओर पूर्व्या है परंतु पूर्वकल्याण अधिक प्रचलन में नहि । वस्तुतः पूर्व्या की अपेक्षा पूर्वकल्याण नाम कानों को अधिक अच्छा लगेगा । यदि पूर्व्या और पूर्वकल्याण भिन्न–भिन्न प्रकार माने जाए तो एक तरह से सुविधा हो सकती है ।

पूर्वकल्याण मारवा थाट में पंचम लगनेवाला एक प्रकार होगा और पूर्व्या उससे एक भिन्न राग माना जाएगा । कहीं गुनीजनों द्वारा पूर्व्या में पंचम वर्ज्य है और दोनों धैवत लगते है और ऐसा माना है कि पूर्वी, पूरिया और मारवा यह तीन राग मिलते है । कोमल धैवत की इसमें कुछ विशेष आवश्यकता प्रतित नहि होती और उसको गौण स्थान में रखा पाया जाता है । कोमल धैवत न लेने से भी कुछ हानी नहि होती । बिलकूल कोमल तो लगता ही नहि है, क्योंकि इस राग में पंचम वर्ज्य है अतः उसको तिव्र करने से राग बिगड़ेगा नहि । इस प्रकार में गांधार और धैवत ठीक संभालना पड़ता है ।

'क्षेत्रमोहन स्वामी' ने यमनीपूरिया पर विशेष टीप्पणी देते हुए कहा है की यमनी पूरीया कभी कभी पंचम वर्ज्य करके भी गाने का व्यवहार है । वह प्रकार 'पूर्व्या' हो सकता है, परंतु वह ऋषभ

तिव्र लगाते है इसलिए उसको पूर्व्या तो नहि कहा जा सकता है ।

प्रचलित राग पूरिया का समर्थन करनेवाले कुछ संगीतज्ञोंने अपनी ओर से राग के लिए कुछ आधार दिये है । जैसे की –

गमनक्रियमेले सा पूरिया बहुसंमता ।
षाडवा पंचमत्यक्ता गांधारांशेन मंडिता ॥
मंद्रावधिर्लक्ष्यविद्भिर्गाधांरोऽत्र नियोजितः ।
मंद्रमध्यस्वरेरेषा नित्यं रक्तिप्रदा भवेत् ॥
सायंगेया यतः सिद्धा पूर्वांगप्रबला स्वयम् ।
उत्तरांगप्रधानाऽसौ सोहन्येव न संशयः ।
निर्योश्च निमयोश्चापि संगतिः सुभगा भवेत् ।
मंद्रनिधनिस्वराणां संहती ह्यध्वदर्शिनी ॥ लक्ष्यसंगीते ॥

कल्पद्रु मांकुरे :–

पूरिया तु षाडवा रिकोमलान्यतीव्रका ।
मद्रमध्यचारिणी सुरक्तिदा पवर्जिता ॥
मंद्रगामिनी मता गवादिनी निसंवदा ।
स्निग्धमंजुलस्वरैर्निशासु गीयते बुधैः ॥

चन्द्रिकायाम् :–

मृदुरिरितरे तीव्रा वादिसंवादिनौ गनी ।
पवर्जिता पूर्वयामे गीयते निशि पूरिया ॥[1]

पूर्व्या राग पूरिया और मारवा के संयोग से होगा । छोटा टुकडा जो की राग को स्पष्ट कर सके वह कुछ इस प्रकार हो सकता है । 'नि़ सा रे॒ ग, म ग', 'ग, नि़ रे॒ सा, नि ध़ नि', 'नि रे॒ ग, म ग, म रे॒ ग', 'ध म ग रे॒, ग म ग रे॒, सा ।

इस प्रकार गायन–वादन के समय मूलराग के निकटवर्ती राग द्वारा आविर्भाव तथा तिरोभाव को दिखाया जा सकता है :

पूर्वी द्वारा तिरोभाव :

पूरिया की मूल प्रतिष्ठा – (सा) नि़ ध़ नि़

राग–पूर्वी द्वारा तिरोभाव – नि़, सा रे ग, म ग रे ग

मूलराग द्वारा आविर्भाव – म ध नि म ऽ ग

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 256

मारवा द्वारा तिरोभाव :

पूरिया की मूल प्रतिष्ठा – नि़ रे ग, म ग नि़ रे सा

मारवा द्वारा तिरोभाव – नि़ रे, रे ग रे

मूलराग द्वारा आविर्भाव – (सा) नि़ ध़ नि़

सोहनी द्वारा तिरोभाव :

पूरिया की मूल प्रतिष्ठा – सां नि ध नि, म ऽ ग

सोहनी द्वारा तिरोभाव – म ध नि सां, रें सां

मूलराग द्वारा आविर्भाव – रें नि म ऽ ग

इस प्रकार गायन–वादन के समय मूल राग के निकटवर्ती राग द्वारा आविर्भाव तथा तिरोभाव का कृत्य दिखाया जाता है ।(1)

इस राग का मुख्य चलन मंद्र व मध्य–स्थानों में होता है । जिस स्वर–पंक्ति से मारवा राग उत्पन्न होता है, उसी से इसकी उत्पत्ति है, किंतु वादी–संवादी भेद तथा अपने मंद्र–सप्तक के चलन के कारण यह राग मारवा से अलग है । निषाद तथा मध्यम की संगति इसकी शोभा बढ़ाती है । मंद्र सप्तक में जब 'सा नि़ध़नि़, म़ग़' यह स्वरमालिका से राग स्पष्ट दिखाई देता है ।

ठाठ मारवा में जबहि, पंचम दीनों त्याग ।

गनि वादी–संवादी सों, कहत पूरिया राग ॥

थाट :– मारवा

जाति :- षाडव

आरोह :- ऩिरे॒सा ग मध निरें॒सां

वादी-संवादी :- ग, नि

अवरोह :- सां निध मग रे॒सा

विकृत स्वर :- रे॒, म

1. बनर्जी, गीता / रागशास्त्र प्रथम भाग / पृ. 138

पकड़ :- ग, ऩिरे॒सा, ऩिध़ऩि, म़ध़ रे॒सा

वर्जित स्वर :- प

गायन समय :- संधिप्रकाश काल

राग पूरिया : त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : श्याम सुंदर की सुंदर मुरतिया, हमरो मन सखि मोह लई री ।

अंतरा : मुकट सीस और कानन कुंडल, सुंदर पीतांबर अति मधुरि ॥

यह आधुनिक राग माना गया है । यह राग सभी घरानों द्वारा गाया जाता है । इस राग के अनेक भेद होने से अलग-अलग घराने में अलग-अलग तरीके से गाया-बजाया जाता है । अगर हम राग में प्रस्तुत की गई रचना के रस के बारे में चर्चा करे तो यहाँ रचनाकार के अनुसार भक्ति रस के शब्दों का प्रयोग किया गया है । जिसमें श्रीकृष्ण के अनेकों नाम जैसे की मुरलीधर, श्याम सुंदर ऐसे पर्याय से श्री कृष्ण के अलौकिक रूप का विवरण किया गया है, जिसमें एक भक्त ने भगवान के श्रृंगार का विवरण किया है । इस प्रकार से देखे तो यह एक श्रृंगारिकता का भी रस उत्पन्न करता है, परंतु यहाँ भक्ति रस का ज्यादा महत्व दिखाई पड़ रहा है । एक भक्तने अपने भगवान के श्रृंगार के बारे में चर्चा की है, उनके स्वरूप के बारे में वर्णन किया है और बताया है कि भगवान का किस तरह से श्रृंगार किया है और उनकी आलोचना करते हुए कहा है कि, इतने प्यारे लग रहे है और उनसे नजर नहीं हटती और उनके अलौकिक रूप के दर्शन कर रहे है । प्रभु के विराट स्वरूप को निहार रहे है, क्योंकि श्रीकृष्ण के शिश पर मुकुट है, जो उनके पीतांबर वस्त्रों द्वारा

सुशोभित कर रहा है, यही सुंदर मुरत भक्त अपनी आंखों में बसाना चाहता है और प्रार्थना कर रहा है ।

शोध के दरमियान शोधकर्तानि पूरिया की अनेको प्रकार की पूरिया की बंदिश को जाना जिसमें संयोग–वियोग रस, श्रृंगार रस और करूण रस की अनेक बंदिशों का अभ्यास किया है । पूरिया राग मारवा के निकटवर्ती रागों में से एक राग है इसलिए स्वर संगतियाँ बहुत मिलती है । 'रे॒ नि म ग' स्वर संगति बहुत ही कर्णप्रिय सुनाई देती है और मुख्यतः मंद्र वे मध्य सप्तक में अधिक गाया बजाया जाता है ।

स्थाई [1]

गमध	गम	ग	रे॒	नि़	रे॒	सा	–	नि़	ध़	नि़	नि़	(सा)नि़	रे॒	ग	–
श्याऽऽ	ऽऽ	म	सुं	द	र	की	ऽ	सुं	द	र	मु	र	ति	या	ऽ
0				३				X				२			
(ग)म	म	ग	–	(ध)म	म	ध	मध	(ध)नि	(ध)नि	म	ग	म	ग	रे॒	सा
ह	म	रो	ऽ	म	न	स	खिऽ	मो	ऽ	ह	ल	ई	ऽ	री	ऽ ।
0				३				X				२			

अंतरा

(ग)म	म	ग	(ध)म	–	म	ध	मध	(ध)सां	–	सां	सां	(नि)सां	रें॒	सां	सां
मु	क	ट	सी	ऽ	स	औ	रऽ	का	ऽ	न	न	कुं	ऽ	ड	ल
0				३				X				२			
(सां)नि	रें॒	नि	ध	(ध)म	ध	(ध)म	ग	म	रे॒	ग	म	ग	रे॒	सा	सा
सुं	ऽ	द	र	पी	ऽ	तां	ऽ	ब	र	अ	ति	मा	ऽ	धु	रि ।
0				३				X				२			

4.4.1.4 राग : पूरिया कल्याण

राग पूरिया कल्याण का सृजन, यमन और पूरिया धनाश्री या पूरिया से मिलकर बना है । कई विद्वान इस राग को पूरिया कल्याण तथा पूर्वा कल्याण के नाम से संबोधित करते है और दोनों राग

को एक ही मानते है, परंतु दोनों राग एक दूसरे से भिन्न है । पूर्वा कल्याण में मारवा पूरिया और कल्याण का मिश्रण है । इस राग में कुछ गायक दोनों धैवत का प्रयोग करते है और यह उचित भी प्रतीत होता है क्योंकि पूर्वा में पूर्वी, मारवा और पूरिया का मिश्रण होने से कोमल धैवत का प्रयोग किया जाता है । पूर्वा कल्याण में कोमल धैवत वाले प्रकार में पूर्वी, मारवा, पूरिया और कल्याण का मिश्रण मानना चाहिए । पूर्वा कल्याण में रिषभ मारवा की तरह और पूरिया कल्याण में रिषभ पूरिया की तरह लगता है । यह वजह से दोनों रागों को भिन्न समजना ही मान्य रहेगा ।

1. श्रीवास्तव, हरिश्चंद्र / हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका (भाग–४) / पृ. 453

पूरिया कल्याण का जन्म मारवा थाट से हुआ है । यह सायंकालिन संधिप्रकाश राग है । संध्याकाल में पूर्वी और भैरव थाट जन्य पूर्वी, गौरी आदि रागों को गाने के पश्चात इस राग को गाया जा सकता है । पूरिया कल्याण एक परमेल प्रवेशक राग भी है । कोमल रिषभ के साथ शुद्ध धैवत होने के कारण यह राग अपने पश्चात आने वाले रे ध शुद्ध वर्ग के रागों की पूर्व जानकारी देता हैं । रे ध शुद्ध वाले रागों के पूर्व एवं रे ध कोमल वाले सायंकालिन संधिप्रकाश रागों का समय ४ से ७ बजे सायंकाल के अंतिम चरण में हैं । प्रचार में लोग इसे ११ बजे रात तक भी गाते पाए गए है परंतु शास्त्र की द्रष्टि से यह उचित नहीं माना गया है । इस राग के अवरोह में उत्तरांग में कल्याण अंग (सां, नि ध प, म ध नि ध प) के पश्चात् पूर्वांग में (प म ग म म <u>रे</u> सा) पूरिया धनाश्री अंग अथवा (म ध ग म ग, म ग <u>रे</u> सा) पूरिया अंग लिया जाता है ।

यह राग का वादी गांधार तथा संवादी निषाद है । कई विद्वान षड्ज को वादी तथा पंचम को संवादी मानते है । पूरिया कल्याण के पूर्वांग में पूरिया का मिश्रण होने की वजह से 'ऩि <u>रे</u> ग' और '<u>रे</u> ऩि' का चलन स्वाभाविक रूप से होने लगता है और इस वजह से षड्ज का बारंबार लंघन होना प्रारंभ होता है । यहाँ एक बात ध्यान में रखना अति आवश्यक है कि संधिप्रकाश राग में (वह सुबह का हो या शाम का) षड्ज वादी नहीं हो सकता । सायंकालीन संधिप्रकाश राग है तो रिषभ, गांधार या पंचम आदि स्वरों में से वादि स्वर होगा । प्रात:काल का संधिप्रकाश राग है तो 'म, प, ध' यह स्वर हो सकते है । सुबह के संधिप्रकाश राग उत्तरांग वादी पाए जाते है । शाम के संध्याकालीन रागों में 'ऩि <u>रे</u> ग' का चलन है '<u>रे</u> ऩि' की संगति पाई जाती है । सुबह के संधिप्रकाश रागों में कभी

भी मध्यम के नीचे वाले स्वर वादि नहीं होंगे । इस दशा में षड्ज वादि के योग्य नहीं दृष्टव्य होगा ।

अधिकतर संध्याकाल में यदि पूर्वी या पूरीया अंग का होगा तो गांधार वादि का स्थान ग्रहण करेगा । अन्यथा श्री या मारवा अंग का राग हुआ तो रिषभ को वादित्व प्रदान करेगा । संध्याकालीन संधिप्रकाश रागों में कई बार पंचम भी वादी का स्थान ग्रहण कर लेता है । उदाहरण के लिए जैताश्री कह सकते है । जिसमें पंचम वादि पाया जाता है ।

राग पूरिया कल्याण में षड्ज को वादी मानना शास्त्र के मुताबिक अप्रमाणीकता तथा अनुचित पाया गया है । राग मिश्रण और सायंगेय राग में गांधार के अत्यधिक महत्व से यह पाया जाता है कि पूरिया कल्याण में गांधार का वादित्व शास्त्र तथा व्यवहार दोनों ही द्रष्टियों से प्रामाणिक और न्याय संगत हो ।

शोधकर्ता द्वारा जब यह राग का अध्ययन हो रहा था तब शोधकर्ता को या ज्ञात हुआ कि, पूरिया की भाँति इस राग में भी षड्ज का अल्पत्व कहना उचित न होगा, क्योंकि यह राग में भी 'नि़ रे ग, रे॒ नि़' का प्रयोग राग विस्तार बराबर होता हुआ पाया जाएगा । प्रस्तुत राग के पूर्वांग में पूरिया अंग होने से रिषभ भी उदासीन भाव से प्रयुक्त होता है । षड्ज के साथ ही निषाद और गांधार अधिक प्रबल है कि षड्ज एक प्रभावशाली स्वर होते हुए भी प्रभावहीन हो जाता है तथा आरोह–अवरोह दोनों में ही लंघन अल्पत्व का स्थान ग्रहण कर लेता है । आरोह में गांधार प्रबल तथा वादि स्वर हैं, अवरोह में निषाद संवादी स्वर से यह अत्यधिक आकर्षित होता है या गांधार–निषाद में अधिक आकर्षक होने के कारण रिषभ इन दोनों स्वरों की और आकृष्ट हो जाता है और इसके कारण अल्पत्व का स्थान ग्रहण कर लेता है । 'नि रे॒ ग' व 'ग रे॒ नि़' का प्रयोग करने के समय रिषभ को दीर्ध नहीं करना चाहिए, नहीं तो मारवा राग समक्ष आयेगा और मारवा कल्याण का रूप धारण कर सकता है ।

रिषभ को आरोह–अवरोह में त्याग नहीं करना चाहिए । 'नि़ रे॒ ग' यह स्वर संगति लेनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार का लगाव सायंकालिन संधिप्रकाश राग का विशेष चिन्ह हैं । 'नि़ सा ग' व 'ग नि़ सा' इस तरह के स्वर नहीं लेने चाहिए । 'नि़ सा ग' का प्रात:कालीन संधिप्रकाश रागों में उपयोग होता है । इस राग में 'नि़ रे॒ ग, ग रे॒ सा' व 'ग रे॒ नि़' ऐसे रिषभ का उपयोग करना चाहिए ।

गांधार का इस राग में आंशिक न्यास बहुत्व है क्योंकि यह राग का वादि स्वर है । गांधार स्वर वादि होने के कारण राग में इसका प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक खुले रूप से होता है । जैसे कि, ऩि रे ग, रे म ग, म ग रे ग, म प म ग म रे म ग, ऩि रे ग, रे सा वगैरह मध्यम का इस राग में अलंघन बहुत्व है । आरोह–अवरोह में हंमेशा प्रयोग किया जाता है परंतु इस स्वर पर न्यास नहीं किया जाता । जैसे कि, ऩि रे ग म प, प म ग, म ग रे ग, म ध नि, नि म ग, म प, प म ग, म रे ग वगैरह ।[(1)]

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि भाग–१ / पृ. 122

इस राग में पंचम बहुत महत्वपूर्ण स्वर है । राग यमन की तरह उत्तरांग में आरोह में पंचम का प्रयोग कम किया जाता है, जैसे 'म ध नि सां' । इस तरह आरोह–अवरोह दोनों में कभी–कभी षड्ज को छोड़ा जा सकता हे । आलाप और तानों का प्रारंभ अधिकतर निषाद से किया जाता है । यह स्वर संगति पूरिया कल्याण का रूप दर्शाती है ।

ऩि रे ग, ग म म ग; म ध प, म ध नि ध प, प म ध प म ग, म रे ग, रे सा, म ध म नि, नि ध म ध प, ध नि सां नि ध प, ग म ध नि सां, नि रे गं, गं मं गं, गं रें सां, नि ध नि ध प, प म ध प, म नि ध म ग, म प म ग, प ध म प म ग, ग रे रे सां, नि, ध म ध, नि रे सा ।[(1)]

विषयोचित्त राग का अध्ययन करते समय शोधकर्ता को यह ज्ञात हुआ कि, इस राग की विशेषता यह मानी जा सकती है कि इस राग का मुख्यतः चलन मंद्र सप्तकों में होता है । यह एक पूर्वांग प्रधान राग है । इस राग की प्रकृति गंभीर प्रकृति मानी गई है । इसमें गमक, कण और मींड का अधिक प्रयोग होता है । यह संधिप्रकाश और परमेल प्रवेशक राग दोनों कहेलाता है । धैवत का आलंघन बहुत्व है । इस स्वर को आरोह में छोड़ते नहीं और अवरोह में अनाभ्यास तथा लंघन अलपत्व दोनों ही है । 'ध प' का प्रयोग करते समय तो धैवत पर अभ्यास न करने से अनाभ्यास और जब भी 'म ध नि म' इस प्रकार धैवत को छोड़ देते है तो लंघन अल्पत्व भी स्पष्ट हो जाता है ।

निषाद का इस राग में न्यास बहुत्व के साथ लंघन अल्पत्व व वक्र प्रयोग भी है । जैसे कि, म ध नि, रें नि, नि ध म ध नि, ध सां (सां) नि । जब म ध सां व म ध नि सां जाते है तो म ध

सां से लंघन अल्पत्व और नि ध सां से वक्र प्रयोग स्पष्ट होता है । इस राग में म ध नि सां का सीधा प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि वह सोहनी का आभास देगा । म ध नि सां जाने पर भी रें नि का प्रयोग कर पूरिया का अंग सामने लाना चाहिए ।

पूरिया कल्याण के समप्रकृतिक राग में पूरिया कल्याण और पूरिया धनाश्री है परंतु रिषभ से कल्याण और पंचम से पूरिया तथा शुद्ध धैवत से पूरिया धनाश्री अलग दिखाई पड़ता है । कई विद्वानों ने इस राग के समप्रकृतिक रागों में मारवा और सोहनी भी माना है । यह एक सरल और बहुत सुंदर राग है और प्रचार में भी यह राग अधिक गाया–बजाया जाता है ।

---

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि भाग–१ / पृ. 124

कोमल रिषभ अरू तीख तब, जहाँ न पंचम होई ।

ग नी वादी–संवादी है, राग पूरिया सोई ॥

थाट	:–	मारवा
विकृत स्वर	:–	रे, म
वर्जित स्वर	:–	प (आरोह में)
जाति	:–	संपूर्ण – संपूर्ण
वादी–संवादी	:–	कोमल रे (रे), ध
गायन समय	:–	सायंकालीन
आरोह	:–	सा, नि रे, म ध, नि रें सां ।
अवरोह	:–	रें नि म ध ग म ग रे सा ।
पकड़	:–	ग म ध ग म ग, म रे ग, रे सा, ऩि ध़ ऩि रे सा ।

राग पूरिया कल्याण : त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : बहुत दिन बीते बीते री, अजहुँ न आये मोरे श्याम ।

अंतरा : जब सुध आई पिया मिलन की,

पिया मोरे घर आये मन्दिलरा बीते ।

पूरिया कल्याण को मुख्यतः गंभीर प्रकृति का राग माना गया है । प्रस्तुत बंदिश में रचनाकारने नायिका को अपनी उलझन बताते हुई दिखाई है । जिसमें नायिका अपने पिया से दूर, उसे देखे बिना चैन नहीं है और अपने नायक को मिले बिना, देखे बिना नायिका को निंद भी नहीं आ रही है । यह उलझनयुक्त परिस्थिति करूण रस के साथ ही 'विप्रलब्ध श्रृंगार रस' भी उत्पन्न होता दिखाई देता है । जहाँ नायक नायिका का परस्पर अनुराग तो प्रगाढ़ रहेता है किन्तु मिलन नहीं हो पाता । इसी लिए इस बंदिश को विप्रलब्ध श्रृंगार रस की बंदिश भी मानी जा सकती है । गहराई से अवलोकन करे तो इस परिस्थिति को रचनाकार ने नायक के देशांतर गमन होने की वजह से इसे प्रवास विप्रलब्ध रस उप्तत्ति कहा जा सकता है । विरह रस को प्रदर्शित करती स्वर संगति 'निध पम ग<u>रे</u> गम पम ग<u>रे</u> सा' अति मधुर पाई गई है । यह उत्तरांग की स्वर संगति नायिका का विरह प्रदर्शित करती है, जो नायिका को अपने नायक के विरह में एक युग समान लगती है, इस तरह रचनाकारने नायिका के इंतजार को दर्शाया है ।

स्थाई (तीनताल)(1)

															सा
															ब
नि़	<u>रे</u>	ग	म	प	–	–	म	–	ग	म	ग	<u>रे</u>	सा	सा	सा
हु	त	दि	न	बी	ऽ	ऽ	ते	ऽ	ऽ	बी	ऽ	ते	ऽ	री	अ
३				x				२				o			
सा	नि़	–	ध़	नि़	–	<u>रे</u>	ग	–	<u>रे</u>	गम	पम	ग	<u>रे</u>	सा,	सा
ज	हूँ	ऽ	न	आ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ऽ	मोऽ	रेऽ	श्या	ऽ	म	ब
३				x				२				o			

अंतरा

म	म	ग	ग	धम	–	निध	–	सां	सां	–	सां	सांनि	<u>रें</u>	सां	–
ज	ब	सु	ध	आ	ऽ	ई	ऽ	पि	या	ऽ	मि	ल	न	की	ऽ

३				x				२				०			
नि	नि	रें	नि	नि	ध	प	प	^ध^नि–	ध–	–	प	म	गरें	गम	पम
पि	या	ऽ	मो	रे	ऽ	घ	र	आऽ	ऽये	ऽऽ	मं	दि	लऽ	राऽ	ऽऽ
३				x				२				०			

ग–	–रें	–,	सा
बीऽ	ऽते	ऽऽ,	ब
३			

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि भाग–१ / पृ. 134

4.4.1.5 राग : भटियार

राग भटियार एक अत्यन्त प्राचीन राग है । इसको कई नामों से सम्बोधित किया जाता है यथा – भटियार, भटिहार, भटियारी अथवा भटियाली, इसके ये विभिन्न नाम इस राग के प्राचीन होने का प्रमाण है । प्राचीन राग होने के कारण ही इसके स्वरूप एवम् नाम में शनैः शनैः परिवर्तन होता आया है । इसके विभिन्न नाम और भिन्न–भिन्न स्वरूप प्रचार में आज भी पाए जाते हैं । कुछ विद्वान इस राग में दोनों मध्यम का प्रयोग करते हैं, कुछ विद्वान एक ही मध्यम एवम् कुछ विद्वान दोनों धैवत तथा कुछ लोग एक धैवत का ही प्रयोग करते हैं । इस प्रकार कहीं पर परज, ललित, कालिंगड़ा का मिश्रण मानते हैं तो कहीं पर राग माँड का । कुछ लोग इसकी उत्पत्ति भैरव, कुछ विद्वान मारवा तथा कुछ विद्वान सूर्यकांत थाट से भी मानते हैं ।

भटियार के नाम के सम्बन्ध में ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है कि, इस राग का निर्माण राजा भर्तृहरि ने किया था, इसलिए इसका नाम भटिहार रखा गया । इस कथन से भी इस राग के प्राचीन होने का प्रमाण मिलता है । प्रस्तुत राग में पुराने स्थाई–अन्तरे उपलब्ध नहीं हैं । इसके अनेक कारण हो सकते हैं यथा – कुछ पुराने गायकों का अनुदार प्रवृत्ति शिष्यों तथा जिज्ञासुजनों (भातखंडे जी आदि) की प्रबल इच्छा तथा योग्य होने पर भी राग तथा बंदिश को देने में अनुदारता, अप्रचलित राग

तथा बंदिशों के लोप होने का कारण हो सकता है ।

शोधार्थी द्वारा विषयोचित्त राग का अध्ययन करते समय यह जानकारी प्राप्त कि है कि, वर्तमान समय में प्रचलित राग भटियार में दोनों मध्यम, कोमल ऋषभ तथा अन्य स्वर शुद्ध प्रयुक्त होता दिखाई है । वादी मध्यम व षड्ज संवादी सर्वमान्य है । प्रस्तुत राग के आरोह–अवरोह में वक्र रीति से सातों स्वरों का प्रयोग अवश्य हो जाता है, अत: इसकी जाति सम्पूर्ण–सम्पूर्ण है आजकल भटियार राग को जो स्वरूप प्रचलित है उसमें शुद्ध मध्यम प्रबल तथा वादी स्वर है, साथ ही तीव्र मध्यम का प्रयोग अत्यन्त अल्प है । केवल तार सप्तक पर जाते समय 'म ध सां' इस प्रकार तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता है । इसके अतिरिक्त प्रस्तुत राग में शुद्ध मध्यम का ही यत्र–तत्र प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता है । मध्यम के इसी अनन्य महत्व को दृष्टिपथ में रखकर प्रस्तुत राग भटियार को मारवा थाट के अन्तर्गत रखना उचित नहीं प्रतीत होता । परन्तु हमारे उत्तर भारतीय रागों को प्रचलित दस थाटों के अन्तर्गत रखते समय उस राग के स्वर एवम् राग के प्रबल अंग को अवश्य ध्यान में रखा गया है । प्रचार में सभी विद्वान इस नियम को मानते हुए पाए गये हैं । राग भटियार में मारवा का कुछ लक्षण हमें उपलब्ध होता है यथा – म ध सां, नि रें सां नि रें गं रें सां । इसके अतिरिक्त कोमल ऋषभ के साथ शुद्ध धैवत का होना भी मारवा थाट का लक्षण है । भटियार राग में उक्त लक्षण उपलब्ध होता है अत: इसी कारण विद्वत वर्ग इसे मारवा थाट जन्य मानते हैं ।

यह एक प्रात:कालीन सन्धिप्रकाश राग है । संधिप्रकाश राग में रेध कोमल एवम् गन्धार शुद्ध होना आवश्यक है । मध्यम एक या दोनों भी प्रयुक्त हो सकते हैं । दोनों मध्यम लगने पर यदि तीव्र मध्यम का प्रभाव अधिक रहा तो गायन समय सायंकाल और यदि शुद्ध मध्यम का प्रभाव अधिक रहा तो गायन समय प्रात:काल मान लेते हैं । प्रस्तुत राग भटियार में शुद्ध मध्यम का प्रभाव अधिक होने के कारण इसका गायन समय प्रात:काल है । मारवा में रे कोमल और धैवत शुद्ध होने से इसको अपवाद स्वरूप संधिप्रकाश रागों का जनक थाट मान लिया जा सकता है । राग भटियार में मारवा थाट का यह लक्षण यथा रे कोमल तथा धैवत और गन्धार शुद्ध विद्यमान हैं । इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध हो जाता है कि भटियार राग को थाट नियम के अनुसार ही मारवा थाट जन्य

माना गया । ऐसे कतिपय विद्वान राग भटियार को सूर्यकांत थाट जन्य भी मानते हैं जो कि दक्षिण के पं.व्यंकटमुखी के ७२ थाटों में से एक है । शोधकर्ता के विचार से भटियार राग को निर्विवाद रूप से मारवा थाट जन्य मानना उचित ही नहीं प्रत्युत आवश्यक भी है ।

भटियार राग एक सन्धिप्रकाश राग ही नहीं प्रत्युत परमेल प्रवेशक राग भी है, क्योंकि धैवत का शुद्ध होना, प्रात:कालीन संधि–प्रकाश रागों के उपरांत रे ध शुद्ध वर्ग वाले रागों के आरम्भ होने के समय की ओर इंगित करता है । संधिप्रकाश रागों के गाने का समय प्रात:काल और सायंकाल ४ से ७ बजे तक का है । इस तीन घन्टे के अन्दर सबसे पहले पूर्वी थाट के राग तत्पश्चात भैरव थाट के राग और अन्त में मारवा थाट के रागों को गाना चाहिये । क्योंकि मारवा थाट के सभी राग रे ध कोमल वाले वर्ग की समाप्ति तथा रे ध शुद्ध वर्ग वाले रागों के आगमन की सूचना देते हैं । इसलिए राग भटियार का गायन समय प्रात:कालीन रे ध शुद्ध वाले वर्ग के रागों के पूर्व का मानना चाहिये । दूसरे शब्दों में राग भटियार का गायन रात्रि के चतुर्थ प्रहर के अन्तिम चरण में मान सकते है ।

इस राग का साधारणत: स्वरूप इस प्रकार है – सा ध, नि प ध म, प ग, प ग रे ऽ सा, म प ग, म ध सां, रें नि प, ध नि प, ध म, म ध प, ध प म, म प ग, प ग रे सा । स्वरों का वक्र प्रयोग इस राग की विशेषता है । इस वक्र प्रयोग के कारण अनेक स्वर संगतियां अनिवार्य रूप से राग में प्रयुक्त होती हैं यथा – सां ध नि प धि म, प गे सा म प ध प, म ध सां, रें नी । आरोह करते समय जब सां ध नी प व ध म प ग स्वर संगति का प्रयोग करते हैं तो मांड राग का आभास होता है, परन्तु इसके पश्चात् कोमल ऋषभ का प्रयोग करने से जैसे – प ग रे सा मांड राग की छाया दूर हो जाती है । यदि केवल ऋषभ को शुद्ध कर दिया जाए तो पूर्ण रूप से मांड राग समक्ष आयेगा परन्तु केवल कोमल ऋषभ 'सां ध नी प ध म प', राग मांड के इतने अधिक स्वर समूहों को भटियार राग में परिणित कर सकता है ।[1]

भटियार राग में राग मारवा और मांड के बहुत से स्वर समूह दृष्टिगोचर होते हैं यथा – सां ध नी प ध म, प ग, इसके अतिरिक्त शुद्ध मध्यम का बाहुल्य एवम् कभी कदाचित प ध सां स्वर–समूह का प्रयोग, राग मांड के चिन्ह हैं । सा ध, इस प्रकार मध्य षडज से मध्य सप्तक के धैवत का लगाव मारवा राग की ओर दर्शाता है । इसके अतिरिक्त म ध सां, नी रें सां रें नी इत्यादि

स्वर समूह भी राग मारवा के ही हैं । इसके अतिरिक्त प ग रे – सा स्वर समूह से मारवा थाट के विभास राग का भी दर्शन होता है । इस हेतु मेरे विचार से भटियार राग को मारवा और मांड तथा मारवा थाट के विभास राग के मिश्रण का परिणाम ही समझना चाहिये ।

प्रस्तुत राग में सा ध, स्वर गाने के बाद पंचम पर कभी नहीं विश्राम करना चाहिए । जैसे सा ध ध प, इस प्रकार पंचम पर विश्राम करने से देशकार राग समक्ष आयेगा, इसलिये सा ध के बाद नी प ध म, व ध प म अथवा ध नी प म, इस प्रकार के स्वर समुदायों का प्रयोग करना पड़ेगा । प्रस्तुत राग में रें नी ऐसा स्वर गाने के बाद धैवत को न तो दीर्घ करना न तो न्यास करना । ऐसा करने से मारवा राग स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगेगा । अतः रे नी के पश्चात ध नी प म व ध प म, इस प्रकार मध्यम स्वर पर न्यास करके तब आगे बढ़ना चाहिये । यह राग एक उत्तरांग एवम् गम्भीर प्रकृति का राग है । उत्तरांग प्रधान राग होने के कारण इसका विस्तार मध्य और तार सप्तक में अधिक होता है । सा म, प इस राग में न्यास के स्वर हैं ।

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि भाग–१ / पृ. 106

मारवा थाट के अन्य रागों की भांति ही प्रस्तुत राग भटियार में भी राग विस्तार के समय षडज का लंघन किया जाता है । जैसे – उत्तरांग में नी रें गं व रें नी इस तरह प्रयोग करने में षडज का लंघन हो जाता है । इस तरह का लंघनात्मक प्रयोग आरोह में कम तथा अवरोह में अधिक दृष्टिगोचर होता है ।

राग के आरोह में ऋषभ का अल्पत्व है । पूर्वांग में तो कभी कदाचित ही नि रे ग, ऐसा प्रयोग होता है परन्तु पूर्वांग में 'सा म' व सा, ग म प, इस प्रकार आरोहात्मक स्वर प्रयोग में ऋषभ त्याज्य ही रहता है । यह अवश्य है कि उत्तरांग में तार षड्ज से ऊपर जाने के लिये नी रें गं, बराबर प्रयोग किया जाता है । प्रस्तुत राग के अवरोह में ऋषभ का अलंघन बहुत्व रहता है । क्योंकि अवरोह करते समय षडज पर आने के लिये ऋषभ को प ग रे सा, इस प्रकार बराबर लगाते हैं । कभी–कभी तो प ग रे ऽ सा, इस प्रकार ऋषभ दीर्घ भी हो जाता है जिससे राग का स्वरूप खिल उठता है ।

राग के आरोह में गन्धार अल्प है, परन्तु अवरोह में इसका अलंघन बहुत्व है । आरोह में

सा ग म प, इस प्रकार गन्धार का प्रयोग कम ही होता है, क्योंकी इस राग में सा म और सा ध की स्वर संगति बार–बार प्रयुक्त होती है । यह अवश्य है कि द्रुत तान के समय सा ग म प, इस प्रकार की स्वर संगति का प्रयोग होता है । गन्धार का प्रयोग आरोह में वक्र रीति से होता हुआ पाया जाता है यथा – सा म, प ग म ध प म ध प । कभी–कभी गन्धार का सीधा प्रयोग आरोह में भी हो जाता है जैसे – ग म प ध नि प ध म । यद्यपि ग म प ध नी प के स्वर लगाव से कुछ–कुछ राग नन्द का आभास होने लगता है, परन्तु नी प के पश्चात् आने वाली स्वर संगति ध म, है जिसमें मध्यम शुद्ध और दीर्घ होने से तथा तत्पश्चात् म प ध, स्वर–समुदाय जोड़ने से राग नन्द की छाया विलीन हो जाती है । ग म प ध नी प ध म, स्वर समूह के अन्त में मध्यम तीव्र होने से पूर्ण रूप से राग नन्द की छाया परिलक्षित होने लगेगी अतः शुद्ध मध्यम के प्रयोग पर विशेष ध्यान रखना चाहिए ।

अवरोह में गन्धार – ध म प ग, प ग रे सा, इस तरह बराबर प्रयुक्त होता है । बिना गन्धार को लगाये ऋषभ तथा षड्ज की ओर नहीं आते हैं । ध म प ग, म ध सां, रें नी प, ध प म, प ग, सा म, प ग प ग रे सा, इस प्रकार राग विस्तार में गन्धार अपन्यास का स्थान ग्रहण कर लेता है । अवरोह में बिना गन्धार लगाये ऋषभ की ओर आने से अनिष्टकारी परिणाम पाया जाता है । यदि मध्यम से ऋषभ पर आये तो भैरव अंग और यदि पंचम से रिषभ पर आये तो श्री अंग समक्ष आयेगा जिससे प्रस्तुत राग का अनिष्ट ही होगा । इन सभी कारणों के प्रकाश में प्रस्तुत राग के अवरोह में गन्धार का अलंघन बहुत्व सिद्ध हो जाता है । पंचम से गन्धार पर उतरने में जो प ग प ग की पुनरावृत्ति होती है, इसमें प ध म प ग को मीड के साथ सावकाश रीति से और द्वितीय प ग का शीघ्र ही उच्चारण करना चाहिए – प ग, प ग रे ऽ सा । दूसरे प ग का झुकाव रिषभ की ओर होने से, दूसरे शब्दों में विशेष आकर्षण होने से यह स्वर संगति विवश होकर रिषभ की ओर खिंच जाती है, जिससे वह स्वयं हल्का पड़ जाता है ।

विषयोचित्त राग का अध्ययन करते समय शोधार्थी द्वारा यह जानकारी हांसिल की है कि, शुद्ध मध्यम का प्रस्तुत राग में आंशिक न्यास बहुत्व (वादी स्वर संबंधी न्यास बहुत्व) है । साधारणतः सभी रागों में यह देखा गया है कि जो स्वर उस राग का वादी (अन्श) होता है उस पर

आरोहात्मक तथा अवरोहात्मक दोनों ही प्रकार का न्यास पूर्ण रूपसे होता है । 'न्यास' संबंधी यह नियम वादी स्वरों के लिये करीब–करीब सभी रागों में आवश्यक रूप से निभाया जाता है । परन्तु भटियार राग के वादी स्वर को इस नियम का अपवाद स्वरूप मानना चाहिये, क्योंकि शुद्ध मध्यम पर केवल अवरोहात्मक न्यास होता है जैसे – सा ध प म, नी प ध म, सा म ऽ प ग म ध प म, प ग म ध सां, रें नी ध नी प, ध प म । इसके विपरीत शुद्ध मध्यम पर आरोहात्मक न्यास यथा – सा ग म, सा म, सा रे नि़ प़, म़ ध़ सा, सा म, इस राग के लिये अहितकर सिद्ध होगा । केवल सा म ऽ स्वर संगति में मध्यम अवश्य आरोह में दीर्घ पाया जाएगा, परन्तु इसको न्यास नहीं कहेंगे । कहने का तात्पर्य यह है कि, आरोह के स्वरों को लेकर मध्यम पर बार–बार जाना और रूकना आरोहात्मक न्यास कहलायेगा जो कि इस राग में त्याज्य है । भटियार राग के स्थाई–अन्तरे जो गाये जाते हैं जैसे – 'उचट गई मोरी नींद' व 'बरनी न जा मोसे तिहारी उपमा' इत्यादि । इन सभी बंदिशों में मध्यम पर अवरोहात्मक न्यास ही दृष्टव्य होता है । इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि राग भटियार में शुद्ध मध्यम पर सदैव अवरोहात्मक न्यास ही होता है । वादी स्वर पर यह अपूर्ण न्यास उत्तरांग प्रधान कतिपय रागों में दृष्टिगोचर होता है । यथा – राग बसन्त में पंचम वादी स्वर है परन्तु उस पर आरोहात्मक न्यास कभी नहीं होता है । इसी प्रकार सोहनी राग में धैवत वादी है परन्तु उस पर आरोहात्मक न्यास कभी नहीं होता है उत्तरांग प्रधान रागों का स्वरूप अवरोह में, स्पष्ट होने के कारण यह अपूर्णत्व साधारणतः आरोह में तथा पूर्वांग प्रधान रागों का स्वरूप आरोह में स्पष्ट होने के कारण यह अपूर्णत्व अवरोह में प्रायः दृष्टत्व होता है ।

भटियार में तीव्र मध्यम का अल्पत्व है । आरोह में म ध सां इस प्रकार तीव्र मध्यम का प्रयोग तार षडज पर जाते समय किया जाता है । यह प्रयोग पंचम, शुद्ध मध्यम और गन्धार के बाद होता है जैसे – म, प ग, म ध सां, ध प म, म ध सां तथा नी प ध म, म ध प, म ध सां । तीव्र मध्यम का प्रयोग हमेशा तार षडज पर जाने के लिये ही किया जाता है । ऐसे तो कभी–कभी शुद्ध मध्यम से भी म म ध सां, इस प्रकार तार षडज पर जा सकते हैं । कतिपय विद्वान तीव्र मध्यम का अवरोह में इस प्रकार प्रयोग करते हैं यथा – म ग रे सा, परन्तु यह प्रयोग उचित नहीं प्रतीत होता

क्योंकि, म, प ग, म ग रे सा इस प्रकार गाने से कुछ–कुछ राग भंखार का आभास होता है । कुछ विद्वान प्रस्तुत राग में – नि़ रे ग म ध नी सां ऐसी तान लगाते हैं परन्तु यह राग भटियार के लिये उपयुक्त नहीं है क्योंकि इस प्रकार सीधा तीव्र मध्यम युक्त आरोह से पूर्ण रूप से मारवा राग होने लगता है । यह राग जिस प्रकार आलापचारी में वक्र है उसी प्रकार तान में भी वक्र रखने से राग का स्वरूप स्थिर रहता है ।

पंचम का प्रस्तुत राग में अवरोहात्मक न्यास बहुत्व है यथा – रें नी प, ध म ध प, इस प्रकार हमेंशा न्यास अवरोह की ओर से होता है । ग म प ध प, प ग, इस प्रकार पंचम आरोह में लगता है परन्तु आरोह में इस पर न्यास नहीं किया जाता । इस राग में अपनी एक अनूठी विलक्षणता है कि षड्ज के अतिरिक्त अन्य किसी स्वर पर पूर्ण न्यास नहीं होता है । इस प्रकार के राग प्रचार में नहीं है ।

धैवत का प्रयोग प्रस्तुत राग के आरोह–अवरोह में सर्वत्र दृष्टत्व होता है परन्तु इस पर न्यास नहीं होता । परन्तु यह अवश्य है कि अनुवादी स्वरों में इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है । सा ध, ध प व ध म ध ऽ प, म ध सां, रें नी ध नी प, नी ध प, म प ग, म प ध नी प ध म प ग म ध ऽ म प म इत्यादि, इस प्रकार यत्र–तत्र धैवत का स्वतन्त्र और दीर्घ प्रयोग होने से धैवत को इस राग में स्वतन्त्र दीर्घ बहुत्व कह सकते हैं ।

राग के आरोह में निषाद का लंघन अल्पत्व है, क्योंकि सदैव तार षडज से मिलने के लिए म ध सां, इस प्रकार प्रयोग होने से निषाद छूट जाता है । अवरोह में निषाद का अनाभ्यास अल्पत्व हैं । रें नि प, ध नि ध प, इस प्रकार निषाद का प्रयोग करने पर भी इस पर विश्राम नहीं करते । इसके अतिरिक्त में सां ध स्वर संगति का प्रयोग करने से कभी–कभी निषाद का लंघन भी हो जाता है । प्रस्तुत राग में म ध नी सां, सां नी ध प ऐसा सरल स्वर–समूह प्रयोग न करना ही श्रेयस्कर हो सकता है ।**(1)**

शोधार्थी द्वारा राग का अध्ययन करते समय यह ज्ञात हुआ कि, राग का समप्रकृति राग

भंखार है, परन्तु भंखार में पंचम वादी है और धैवत के साथ तीव्र मध्यम की संगति ध म होने से भटियार उससे भिन्न हो जाता है । यद्यपि उक्त दोनों रागों में, दोनों मध्यम का प्रयोग होता है परन्तु राग भटियार में शुद्ध मध्यम एवम् भंखार में तीव्र मध्यम अधिक है । एक ही थाट और प ग, म ध रें नी स्वर संगति, गायन समय एवं समान रूप में स्वरों का प्रयोग होने पर भी अपने–अपने प्रमुख नियमों के कारण यह दोनों राग एक दूसरे से काफी पृथक होते पाये गये हैं । भटियार में सा, म, इन स्वरों पर विश्रांति होती है इसके अतिरिक्त राग भटियार का उठाव सा सा ध, प म, इस प्रकार ध म की संगति राग भटियार में अधिक होने से भटियार राग भंखार राग से काफी भिन्न परिलक्षित होता है । अवरोहात्मक आलापचारी में प ग रे रे सा इस स्वर संगति, से क्षणिक मारवा थाट के विभास राग का आभास होता है परन्तु तत्काल सा म, म प ग अथवा सा ध ध प म, इन स्वर समूहों के प्रयोग से विभास राग का आभास दूर होकर पुनः भटियार राग का स्वरूप स्थापित हो जाता है ।

---

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि भाग–१ / पृ. 109

राग का स्वरूप अत्यन्त वक्र होने के कारण सरल आरोह–अवरोह निश्चित करना ठीक नहीं है, अतः सा ध, ध प म, प ग, म ध सां रें नि प, ध म, प ग प ग रे ऽ सा, म, म प ग म ध प म, म प ग रे ऽ सा – इस राग का मुख्य चलन यह किया जा सकता है ।

आरोहन नी अल्प ले, मध्यम दोउ सम्हार ।

रे कोमल, संवाद मस, कहत राग भटियार ॥

थाट	:–	मारवा
विकृत स्वर	:–	रे तथा म (दोनों)
वर्जित	:–	०
जाति	:–	संपूर्ण – संपूर्ण वक्र
वादी–संवादी	:–	म, सा
गायन समय	:–	रात्रि का अंतिम प्रहर
आरोह	:–	सागम, पग, मधप, मधसां

अवरोह :– रें नि, धपम, पग, रेसा

पकड़ :– सा, ध, प, धम, पग, मध, सां, रेंनि, ध, प, म, पग, रेसा

राग : भटियार त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : मनहर लीन्हो मौरा रे सांवरी सुरत दिखाय ।

अंतरा : देखत ही बिसरी सुध बुध तन की,

'रामरंग' कछु ना सुहाय ॥

भटियार को ही भटियारी या भटिहार भी कहते हैं । शुद्ध मध्यम पर विश्रांति है । तीव्र मध्यम इस राग में रात्रिगेयत्व का परिचायक है । पग तथा धम की स्वर संगतियाँ इस राग में वैचित्र्य उत्पन्न करती हैं और सुन्दर मालूम होती हैं । आरोह में निषाद दुर्बल और अवरोह में वक्र है। यह प्राचीन राग है, कई ग्रंथों में इसका उल्लेख पाया जाता है । किंतु प्राचीन ग्रंथोक्त भटिहार और वर्तमान प्रचलित भटियार के स्वरों में भिन्नता पाई जाती है । कोई–कोई गुणीजन खमाज ठाठ के अंतर्गत भी भटियार का एक प्रकार गाते हैं, किंतु उसका विशेष प्रचार नहीं है । राग भटियार मारवा थाट का राग माना गया है, परंतु भटियार में मांड़ राग की छाँट अवश्य दिखाई पड़ी है । यह राग के स्वर आकर्षित है एवम् आत्मानंद की अनुभूति प्रदान करते है । सा ध, नि प ध म, प ग, प ग रे सा यह स्वर संगति राग का रस उत्पन्न करने की क्षमता रखता है और यह राग वक्र चलन इस राग को और भी आकर्षित बनाता है । भटियार राग की प्रकृति वैसे तो गंभीर मानी गई है, परंतु ज्यादातर रचनाओं में विरह तथा करूण रस पाया गया है । अगर निम्नलिखित प्रस्तुत रचना की बात करे तो भक्ति रस एवं शान्त रस दिखाई पड़ेगा । मीरा एक जो कि ऐसी नायिका है जो की श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन है और श्रीकृष्ण भगवान को अपना सब समर्पित कर चूकिं है । शब्दों के अनुसार रचनाकार प्रभु को प्रार्थना करते हुए यह कह रहे है कि, प्रभु के शरण में ही आसित होना है, जो की बहुत ही शांत एवम् स्थिर भाव उत्पन्न होता हुआ दिखाई पडता है, जिसमें प्रभु की साँवरी सुरत देखने के बाद एक भक्ति समान प्रेम की चरमसीमा बैराग को बताते हुए कहेते है कि प्रभु के दर्शन ही जीवन पार लगायेंगे । यह दर्शन मात्र की अभिलाषा वैराग की संवेदना जगा रही है, जो

रचनाकार (रामरंग) की तिव्रता बताती है । जो गांधार जाके अचल षड्ज पर अंत करते है, जो शांत रस की अनुभूति करवाता है । सुबह का राग होने की वजह से भक्ति का भाव दिखाई पडना स्वाभाविक है । हवेली संगीत में भी इस राग में भगवान के पद का पठन किया जाता है ।

स्थाई [1]

															सा
															म
ध	धप	मप	म	म	–	म	प	प	ग	पं	ग	रे̲	सा	–	सा
न	हऽ	ऽऽ	र	ली	ऽ	ऽ	ऽ	न्हो	ऽ	मो	ऽ	रा	रे	ऽ	सा
३				X				२				०			
म	म	–	म	प	ग	ग	ग	म	–	प	ध	(ध)नि	(प)ध	प,	म
व	री	ऽ	सु	र	ऽ	त	दि	खा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	य,	म
३				X				२				०			

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि भाग–१ / पृ. 119

अंतरा

															म
															दे
ध	सां	–	सां	सां	–	–	–	सां	नि	नि	रें̲	सां	–	–	नि
ऽ	ख	ऽ	त	ही	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	बि	स	री	ऽ	ऽ	सु
३				X				२				०			
नि	रें̲	गं	रें̲	सां	–	–	–	नि	–	रें̲	नि	(ध)नि	ध	प	म
ध	बु	ऽ	ध	त	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न	ऽ	की	रा
३				X				२				०			
ध	ध	–	प	(नि)ध	नि	प	ध	–	प	म	प	ग	रे̲	सा,	सा
म	रं	ऽ	ग	क	छु	ऽ	ना	ऽ	ऽ	ऽ	सु	हा	ऽ	य,	म
३				X				२				०			

4.4.1.6 राग : ललित

यह राग हिन्दुस्तानी पद्धति में एक अति मधुर और प्रसिद्ध समजा जाता है और प्राय: सभी गायकों को आता है । इस राग का अंग बिलकूल स्वतंत्र होने के कारण इसे पहचानने में कठीनाई नहीं होती । प्रात:काल के समय में सोहनी और ललित यह दोनो अंग बड़े ही सुहावने प्रतीत होते है । ललित में दोनों मध्यमों का बड़ा विचित्र प्रयोग हैं । ललित में तिव्र धैवत का प्रचार अधिक है । कोई कोई संगीतज्ञ इस राग को कोमल धैवत भी लगाकर गाते हैं, परंतु वह रूप कम प्रचलन में देखा गया है । कई संस्कृत ग्रंथों में ललित का धैवत कोमल कहा हैं परंतु अनेक ग्रंथों में तिव्र मध्यम नहीं दिया, यह अपवाद हुए है । कुछ दक्षिणी ग्रंथों में ललित राग को सूर्यकान्त थाट में बताया है । उस थाट में धैवत तिव्र है ।

ललित राग को एक षाड्व प्रकार माना गया है । इसमें पंचम को वर्जित करने का रिवाझ बहुसम्मत हैं । पूर्व के ग्रंथों में ललित राग संपूर्ण लिखा हुआ दिखाई पड़ता है । फिलहाल ललित के स्वर 'सा रे ग म म ध नि सां' यह माने गए है । 'सा रे ग म, म ध नि सा' यह गाने से ललित राग दिखाई देगा । इसके कोमल मध्यम का खुल्ला उच्चारह होते ही राग को समझने में आसानी हो जाती है । केवल इस मध्यम से ही इस राग का गाना बहुत सरल हो जाएगा । इस मध्यम की सहायता से कितने ही सायंगेय टुकडे यदी जोड़ दिए जाए तो भी राग का स्वरूप लुप्त नहीं होगा । ललित उत्तरांग प्रधान राग है, इसके पूर्वांग का कोई महत्व नहीं माना गया है । कोमल मध्यम का वैचित्र्य बिलकूल स्वतंत्र है इसमें कोई संदेह नहीं । 'नि रे ग म, म, म म म ग' इतने स्वर से ही ललित की ओर आकर्षित होगा । उत्तरांग प्रधान रागों में आरोह करते समय अनेक बार ऋषभ दुर्बल दिया हुआ दिखाई पड़ता है । 'ऩि रे सा, ग म' और 'म ध, म म' ये दोनो टुकडे इस राग की जान है । 'ग म म म' इस तरह बीच–बीच में मध्यम जोड़ने से राग–रक्ति अधिकाधिक बढ़ाई जा सकती है ।

ऩि, सा, ग, म, ग, रे सा, रे ग म, ऩि रे ग म, ग, म म ग म, रे ग, म ग, रे सा, ऩि सा, ध़ ऩि सा, ग म, म म, रे ग, म, ग म म ग म, रे ग, ऩि रे ग म, ग, रे सा, ऩि रे सा; ऩि रे ग म, रे ग म, सा रे ग म, म म, ग, म ग रे सा । यह विस्तार करने से ललित को जानना आसान होगा ।

संध्याकालीन रागों में ऐसा खुल्ला कोमल मध्यम लगनेवाले राग, गौरी के एक प्रकार के अतिरिक्त कोई नहि हैं । इसलिए श्रोताओ को प्रात:गेय प्रकारों में ही उसे ढुंढना पड़ेगा और ऐसा करने से उन्हें स्वयं ललित दिखाई पड़ेगा । गौरी में पंचम है और धैवत कोमल है । गौरी में 'म, रे ग, म ग, रे सा' और इसमें 'नि़ रे ग म, म म ग' यह टुकडा जो गौरी में नहीं लिया जाता । ललित राग के उत्तरांग में धैवत और मध्यम की संगति संभालना बड़ी कुशलता का कार्य है । 'नि रे ग, म, म म, ग' यह स्वर गा कर आगे 'म ध, म म, ग' ऐसा टुकडा कुछ सावकाश रीति से कहे तो ललित का स्वरूप उत्पन्न होगा । 'ध, म म ग' यह स्वर मींड से लेने से परिणाम और भी संतोषजनक होगा । कुछ मार्मिक व्यक्ति 'म ध, नि ध, म ध, म म, ग' ललित की तालीम लेते समय खास सिखाये जाते हैं ।

ललित के साधारण चलन को देखा जाए तो वह कुछ इस प्रकार हो सकता है ।''नि़ सा, ग, म, म ग, म म म म, म ग, रे सा, नि़ रे सा; नि़ रे ग, रे ग म, ग म म ग, म, ग, म ध, म म, ग, म ग रे सा; नि़ सा, ध़ नि़ सा, ग, म, ध म ध, म म ग, रे ग, म ग रे सा, नि़ सा ग म ।''

ललित में निषाद का गौणत्व स्वयमेव दिखाई पड़ता है, क्योंकि 'ध म ध' यह विचित्र संगति उत्तरांग में निषाद को आगे लाने का प्रयत्न यदि करे भी तो थोड़ा सोहनी का अंग दिखाई ही देगा । इसलिए कुशल गायक 'म ध नि सां, रें सां, नि ध' यह प्रकार यथासंभव ललित में नहीं उपयोग करते ।

राग का अध्ययन करते समय शोधार्थी द्वारा इस राग में यह जानकारी प्राप्त की है कि, पूर्वांँग में यदि 'नि़ रे ग, म, म, म ग' इस टुकडे से राग व्यक्त होता है और उत्तरांग का अगर देखे तो 'सां, रें नि ध, म ध, म म' ऐसा व्यक्त हो सकता है । वह जिस जिस स्थान पर आती है वहाँ बहुधा ललितांग होता है । उत्तरांग की और बढ़ते समय 'ग, म ध सां, सां रें सां, गं रें सां, नि सां, रें नि ध, म ध सां, रें नि ध, म ध, म म ग' आदि ऐसा प्रस्थान कर सकते हैं । यह भाग वास्तव में बहुत ही सुंदर दिखता है । मध्यम, धैवत की संगति जितनी गंभीरता से लाई जा सके उतना लाने का प्रयास करना चाहिए । पूर्वांग में 'नि़ रे ग म, म म ग' इस तरह ऋषभ लगाया जाता है । कुछ सूक्ष्म स्वरदर्शी बिनकारों का कहेना है कि, 'ललित का धैवत न तीव्र है, न कोमल' और यह भी कहते है

कि इस प्रकार का धैवत गायकों को विशेष रूप से तलाश करने की आवश्यक्ता नहीं पड़ती । धैवत की संगति में स्वत: ही अपने स्थान पाया जाता है ।

ललित में कोई कोई पंचम स्वर मानने को तैयार हो जाते है । उनको राग ललितपंचम, पंचम, भटीयार आदि पंचम स्वर लगने वाले रागों से पृथ्थक करने में बहुत अडचन आती है । क्षेत्रमोहन स्वामी ने ललित में पंचम स्वीकार का कारण ऐसा कहा है कि, ललित में पंचम वर्ज्य किया जाए तो वसंत और ललित को अलग-अलग करने का कुछ बचता नहीं है । वसंत में 'म ग' स्वरों की पुनरावृत्ति विलक्षण है और धैवत-मध्यम की संगति ऐसी नहीं हैं । वसंत भी अपनी जगह निराला है और ललित अपनी जगह निराला है । हिन्दुस्तानी गायक ललित में पंचम अवश्य ही वर्जित करेंगे परंतु पंचम रखेंगे तो उसका स्वरूप कुछ इस प्रकार हो सकता है 'नि़ सां, ग म, म प ग, रे॒ ग म, ध, म प ग, प ग रे॒ सा, रे॒ ग म' यह स्वरसंगति से मतभेदों की विचित्रता बढ़ती है । किन्तु गायक यदि उसे समजकर गाये तो अवश्य प्रसंशा होगी । तानपूरे का पहेला तार जो पंचम में मिला रहेता है उसे ललित राग गाते समय गायक लोग खास तोर पर मध्यम में मिलाते है । ऐसा करने से ललित में पंचम भास न हो पाएगा । जिन रागों में पंचम वर्ज्य नहीं है उनमें उस ओर अधिक ध्यान नहीं जाता परंतु मध्यमवादी रागों में मध्यम को व्यस्त अथवा खुल्ला रखने के लिए यह प्रयत्न रहेता है । उसका परिणाम ऐसा होगा की श्रोतागण उस मध्यम को ही षडज समजने लगते है और तनिक सी सावधानी में स्वयं अपने को भी कभी-कभी वैसा भ्रम होने लगता है । यह एक बड़ी मनोरंजक बात है ।

ललित में पंचम स्वर का उपयोग करने से 'ललितपंचम' नामक एक प्रकार दिखेगा, जो कि अपने में ही एक अलग प्रकार है । ललित मारवा थाट का राग है और वह षाड्व है । इसके आरोह-अवरोह में पंचम नहि लगता । गायन समय रात्रि का अंतिम प्रहर है । इसमें दोनो मध्यम का उपयोग किया जाता है । कोमल मध्यम उसका वादी स्वर है और उसे खुल्ला लगाकर गाया जाता है । इस राग में जब दोनो मध्यम लगेगे तो यह राग बहुत खुलता है । धैवत की संगति बहुत ही आनंददायक पाई गई है । इसे लगाते समय मींड लि जाएगी जिसे राग की गंभीरता व मधुरता बढ़ेगी । यह राग के बारे में अन्य ग्रंथकार अपना क्या मत देते है वह जानते है ।

रत्नाकरे :-

टक्कभाषैव ललिता ललितैरूत्कटैः स्वरैः ।

षड्जांशकग्रहन्यासा षड्जमंद्रा रिपोज्भिक्ता ॥

धीरैर्वीरोत्सवे प्रोक्ता तारगांधारधैवता ॥[1]

दूसरा प्रकार :-

भिन्नषड्जेऽपि ललिता ग्रहांशन्यासधैवता ।

टक्क और भिन्न षड्ज, इसका रूप ऐसे बताया गया है ।[2]

संगीतदर्पणे :-

रिपवर्ज्या च ललिता औडवा सत्रया मता ।

मूर्च्छना शुद्धमध्या स्यात् संपूर्णा केचिदूचिरे ।

धैवतत्रयसंयुक्ता द्वितीया ललिता मता ॥[3]

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग-३ / पृ. 311
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग-३ / पृ. 311
3. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग-३ / पृ. 311

इस व्याख्या के द्वारा 'सा ग म ध नि सां' स्वर ललित में उत्पन्न होते है ।

स्वरमेलकलानिधी :-

सग्रहसन्यासयुक्ता ललिता पंचमोज्भिक्ता ।

षाडवा प्रथमे यामे गेया सा शोभनप्रदा ॥[1]

इस राग को रामामात्य ने मालवगौड थाट में रखा है, इसीलिए धैवत कोमल होगा ।

रागविबोधे :-

उपसि तु पूर्णाऽपा वा सांशांत्याद्या शुचिर्ललिता ।[2]

संगीतसारामृते :-

पहीना षाडवा टक्कभाषेयं ललिता प्रगे ।

गेया मालवगौलीयान्मेलाज्जाता च सग्रहा ॥[3]

सोमनाथ भी इस ललिता का थाट मालवगौड़ मानते है, इस वजह से धैवत का निर्णय पाठको को करना पड़ेगा । पंचम सहीत और पंचम रहीत ऐसे दो प्रकार इस ग्रंथकार ने दिये है । कोई कहते है की पंचम लगनेवाले प्रकार को 'शुद्ध ललित' नाम देकर उसे पृथ्थक प्रकार माना है ।

रागलक्षणे :–

मायामालवमेलाच्च जातो ललितनामकः ।

सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमेव च ।

आरोहेऽप्यवरोहे च पवर्ज्यं षाडवं तथा ॥

सा रे ग म ध नि सा । सा नि ध म ग रे सा ॥[4]

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 311
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 311
3. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 311
4. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 312

सद्रागचंद्रोदये :–

शुद्धो सरी शुद्धपधैवतौ चेन्मनामधेयो लघुपूर्वकश्य ।

लध्वादिकौ षड्जपंचमी चेद्विशुद्धरामक्र्यभिधस्य मेलः ॥

सांशग्रहांतो ललितोऽपरोऽसौ सप्तस्वरः प्रातरसौ विगेयः ॥[1]

इसमें मध्यम तिव्र है जो एक महत्वपूर्ण तथ्य है । कइ ग्रंथकार ललित में कोमल मध्यम लेते है । पांडुरीकने 'शुद्ध ललित' नामक एक प्रकार मालवगौड़ थाट में कहा है । पांडुरीकने 'रागमाला' में कुछ इस तरह कहा है :

रागमाला :–

भैरवः शुद्धललितः पंचमः परजस्तथा ।

बंगालश्चेति पंचैते शुद्धभैरवसूनवः ॥

ललितश्च विभासश्च सारंगस्त्रिवणस्तथा ।

कल्याण इति पंचैते देशिकारस्य सूनवः ॥[2]

लक्षण :-

सांशाद्यन्तः प्रवीणः शुचितरललितो मारवीमेलजातो ।

भाले धत्ते सुबिंदु कनकसमनिभं शुभ्रवस्त्रं दधानः ॥

गौरांगश्चंपमल्लीकुसुमभरशिराः पंकजक्षो विलासी ।

कामी तांबूलहस्तः प्रतिदिनमुषसि प्रार्थकः खंडितानाम् ॥[3]

यह शुद्ध ललित का वर्णन हुआ । कुछ गायक 'ललित' व 'ललत' इन्हें भिन्न-भिन्न राग मानते है तो इनकी अपेक्षा 'शुद्ध ललित' और 'ललित' इन्हें पृथ्थक मानना ठीक होगा ।

अनूपसंगीतरत्नाकरे :-

संपूर्णः सत्रिकः शुद्धललितः प्रातरिष्टदः ।[4]

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग-३ / पृ. 312
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग-३ / पृ. 313
3. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग-३ / पृ. 313
4. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग-३ / पृ. 313

यह प्रकार भावभट्ट में गौरी थाट में रखा है, अर्थात् वह भैरव थाट ही होगा ।

Capt. Willard ने ललित के अवयव देशी, विभास व पंचम अथवा देशी व विभास कहे है । अभी जो ललित का प्रचलित रूप है वह कुछ इस तरह बताया जा सकता है ।

मारवामेलने गीता रागिणी ललिताऽधुना ।

आरोहे चावरोहेऽपि पंचमेन विवर्जिता ॥

विश्लिष्टमध्यमस्तस्यां कस्य नो द्रावयेन्मनः ।

संगतिर्मधयोर्नित्यमपूर्वां रक्तिमावहेत् ।

शुद्धमध्यमवादित्वं सर्वत्र बहुसंमतम् ।

अमात्यत्वं भवेत्षड्जे शास्त्रोक्तनियमागतम् ॥

उत्तरांगप्रधानत्वे तारषड्जविचित्रता ।

अत्रापि लक्षिता तज्ज्ञै रजन्यां प्रहरेंऽतिमे ॥[1]

कल्पद्रमांकुरे :-

गीतांतेऽसौ भवति ललितः कोमलेनर्षभेण

युक्तस्तीव्रैस्तु ग म ध नि भिः कोमलेनापि मेन ॥

मांशः षड्जोऽत्र तु सहचरः पंचमो वर्ज्यतेऽस्मिं–

स्तुर्ये यामे निशि सुमतिभिर्गीयते मंगलार्हः ॥[2]

चन्द्रिकायाम् :–

मृदू रिर्निधगास्तीव्रा मद्वयं पंचमो न हि ।

समसंवादिवादी च गीतांते ललितः शुभः ॥[3]

चंद्रिकासार :–

द्वै मध्यम कोमल रिखब पंचम सुर बरजोई ।

समसंवादिवादी च गीतांते ललितः शुभः ॥[4]

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 315
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 316
3. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 316
4. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग–३ / पृ. 316

ललित में धैवत कोमल लगता है और दोनों मध्यम माने गये है । ललित के चलन की चर्चा करे तो उसका साधारण चलन यह हो सकता है : 'ग, रे सा, ऩि रे ग, म, म म ग, म ध, म ध, ध, म म ग, ग, म ध, नि ध, म ध, म म ग, म ग रे सा, ऩि रे ग, म; ग, म ध सां, सां, नि रें सां, नि रें गं रें सां, नि, रें नि ध, म ध सां, रें नि ध, नि ध, म ध, म, म, मं गं, रें सां, रें नि ध, म ध, सां, नि ध, म ध, म म, म, ग, म ग रे सा, ऩि, रे ग, म ।'

ललित राग में उसके समप्रकृतिक रागों का तिरोभाव–आविर्भाव कुछ इस प्रकार दिखा सकते है । कोमल धैवत के ललित में तोड़ी, बसंत और परज इत्यादि रागों द्वारा तिरोभाव ।

मूल राग ललित की प्रतिष्ठा – सां नि ध, म ध म म म ग, म ध नि ध सां ।

राग बसंत द्वारा तिरोभाव – म ध रें ऽ सां ।

ललित राग द्वारा आविर्भाव – रें, नि ध, म ध म म ।

मूल राग ललित की प्रतिष्ठा – ऩि रे ग म म म ग, रे ग म ।

मध्यम को षडज मानकर तोड़ी राग द्वारा तिरोभाव – म म ध, ध म ध (तोड़ी के अनुसार इस प्रकार स्वर होंगे) सा रे ग, रे ग म रें ग रे रे ग, ग रे सा ।

पुनः ललित का आविर्भाव – ग म ग रे ग रे सा नि़ रे ग म ।

राग ललित की मूल प्रतिष्ठा – सां नि ध म ध म म ।

परज द्वारा तिरोभाव – ग म ध नि नि सां, सां रें सां रें नि ऽ सां, नि ध नि ।

ललित द्वारा आविर्भाव – रें नि ध म ध म म ।

शुद्ध धैवत के ललित राग में मारवा, पूरिया, सोहिनी और हिंडोल रागों द्वारा तिरोभाव कुछ इस प्रकार हो सकता है :–

मूल राग ललित की प्रतिष्ठा – सां नि ध म ध म म ।

राग मारवा द्वारा तिरोभाव – ग म ध – नि रें ऽ नि ध, नि ध सां ।

राग ललित द्वारा आर्विभाव – म ध म म ।

मूल राग ललित की प्रतिष्ठा – ग म म (म) ग, म ध नि ध सां ।

राग पूरिया द्वारा तिरोभाव – सां (सां) नि ध नि, रें नि म ध नि म ऽ ।

राग ललित द्वारा आविर्भाव – म ध म म ।

मूल राग ललित की प्रतिष्ठा – सां नि ध, म ध म म ।

राग सोहिनी द्वारा तिरोभाव – ग म ध नि सां, ध नि ध नि सां रें सां, नि ध नि ।

ललित द्वारा आविर्भाव – म ध म म (म) ग ।

मूल राग ललित की प्रतिष्ठा – रें नि ध म ध म म ।

हिंडोल द्वारा तिरोभाव – ग म निध सां, सां ध म ध ।

ललित द्वारा आविर्भाव – नि ध म ध म म, (म) ग ।[1]

शोधार्थी द्वारा शोध समय यह ज्ञात किया कि, ललित के दोंनो प्रकारों में उपरोक्त ढंग से इस प्रकार आविर्भाव तथा तिरोभाव दिखाया जा सकता है । यह राग का मुख्य अंग है : नि़ रे ग म, म म ग, सां नि ध म ध म म । यह इस राग का एक ऐसा स्वर समूह है जिससे यह राग पहचाना जा

सकता है । इसका स्वरूप पूर्णरूपेण स्वतंत्र है, जो कि यह राग की एक विशेषता हैं । इसका कोई भी समप्रकृतिक राग नहि है इसलिए इसे रागांग राग कहा जाता है । पूर्वी थाट के ललित राग के उत्तरांग में – ग म ध सां, म ध नि ध सां, म ध नि रें सां, नि रें गं, म गं रें सां । यह स्वरसमूह से कुछ पूरीयाधनाश्री और बसंत रागों का भी अब आभास होता है । परंतु शुद्ध मध्यम का उपयोग यह क्षणिक प्रभाव नष्ट हो जाता है । मारवा थाट के ललित राग के उत्तरांग में सोहिनी और मारवा का आभास होता है । परंतु शुद्ध मध्यम यह शंका को दूर कर देता है । इसीलिए प्रचलित में सभी रागों में प्रस्तुत राग का स्वरूप अलग–अलग तथा स्वतंत्र पाया जाता है ।

दो मध्यम, कोमल ऋषभ, पंचम वर्जित जान ।

मस वादी–संवादि सों, ललित राग पहचान ॥

थाट	:–	मारवा
विकृत स्वर	:–	रे म
वर्जित	:–	o

1. बनर्जी, गीता / राग शास्त्र (भाग–१) / पृ. 29

जाति	:–	षाडव
वादी–संवादी	:–	मसा, म
गायन समय	:–	रात्रि का अंतिम प्रहर
आरोह	:–	ऩिरेगम ममग मधसां
अवरोह	:–	रेंनिध मध ममग रे सा
पकड़	:–	ऩि रे ग म, धम धमम, ग

धम धम यह स्वर–समुदाय ललित में बारंबार दिखाई देता है और यह महत्त्वपूर्ण भी है । इसी प्रकार ऩि रे गम, ममग, इन स्वरों के द्वारा ललित राग का स्वरूप तत्काल परिलक्षित होने लगता है । यह उत्तरांग–प्रधान राग है । रात्रि के अंतिम प्रहर, अर्थात् प्रात:काल ब्राह्म–बेला है । कुछ ग्रंथों में यह राग कोमल धैवतयुक्त मिलता है, किंतु प्रचलन में तीव्र धैवत ही लेते हैं ।

राग ललित, त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : कगवा बोलन लागे, बड़ी भोर मन मोहन जागे ।

अंतरा : चहुँ दिस रिन सूरज की छिटकी मनरङ्ग मन अनुरागे ।

राग ललित का अंग बिलकूल ही स्वतंत्र अंग है । दोनों मध्यम का उपयोग अति कर्णप्रिय साबित हुआ है । राग के रस के बारे में बात करे तो यह राग मानव की मन:स्थिति को बयान करता है । मानव के मन में अनेक प्रकार के भ्रम पलते है जिसे वास्तविक स्थिति का बहुत दूर तक कोई नाता नहीं होता । वहीं विभ्रम की स्थिति में वास्तविक के बजाये कुछ और ही सुनाई या दिखाई पड़ती है । ऐसी ही स्थिति को यह राग का भाव बताता है । मानव मन में अनेक प्रकार की भ्रमणाएं पैदा होती है जिसका वास्तविक स्वरूप कुछ और ही होता है और ऐसी ही कुछ स्थितियाँ मानव जीव को भगवान के करीब ले जाती है जिससे भक्ति रस का उत्पन्न होना अपने आप में स्वाभाविक है । यही भक्ति रस एक समर्पण की भावना उत्पन्न करता है और भक्त को दुनिया की सारी चीज़ वस्तुएं मिथ्या लगते लगती है और यही भाव मानव के मन में वैराग उत्पन्न करते है । यह राग की प्रस्तुत बंदिश के बारे में चर्चा करे तो रचनाकारने इस में मोहन 'श्रीकृष्ण' के जगने की बात हो रही है । जैसे की यह प्रात:काल का राग है तो बंदिश के शब्दरचना को ध्यान में रखते देखे तो कगवा सुबह बोल रहा है और कगवा के बोलने से मोहन जाग गए है । मोहन के जागते ही चारों और सुरज की किरने फैल रही है, दिन बढता जा रहा है और उजियाला छा गया है । प्रस्तुत बंदिश भक्ति रस की बंदिश कही जा सकती है, क्योंकि सुबह के समय मोहन को रिझाया जा रहा है और जगाया जा रहा है जिसमें दोनों मध्यमों की स्वर संगति अति सुंदर प्रतीत हो रही है ।

स्थाई (1)

ग	म	ग	रे	नि़	रे	ग	म	म	म	–	म	म	(म)	ग	रे
क	ग	वा	ऽ	बो	ऽ	ल	न	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	गे	ऽ
0				३				x				२			
धम	ध	म	धनि	सां	सां	सां	सां	नि	रें	नि	ध	मध	म	–	मग

ब	ड़ी	ऽ	भोऽ	ऽ	र	म	न	मो	ऽ	ह	न	ऽ	जा	ऽ	गेऽ
0				३				x				२			

अंतरा

ग	ग	ग	ग	म	ध	म	ध	सां	सां	सां	–	सां	रें	सां	–
च	हुँ	दि	स	कि	र	न	सू	र	ज	बी	ऽ	छि	ट	की	ऽ
0				३				x				२			
सां	सां	सां	सां	नि	निरें	नि	ध	मध	निसां	निध	मध	निध	मध	मम	ग
म	न	रं	ग	म	नऽ	अ	नु	राऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	गे
0				३				x				२			

1. बनर्जी, गीता / राग शास्त्र (भाग–१) / पृ. 30

4.4.1.7 राग : विभास

यह विभास राग अपने प्राचीन ग्रंथों में वर्णन किया हुआ दिखाई नहीं देता । ग्रंथों में भैरव और पूर्वी ठाठ के विभास है । मारवा ठाठ का प्रकार यद्यपि संस्कृत ग्रंथकारों (प्राचीन ग्रंथकारों) ने नहीं कहा । यह विभास सम्पूर्ण है और इसकी विशेष बात यह है की इस राग में कोमल मध्यम बिलकुल नहीं लगाया जाता । पंचम, भटियार, भंखार आदि में दोंनो मध्यम लगनेवाले राग इसी कारण विभास से दूर रहेंगे । विभास में एक तिव्र मध्यम ही है, तो उसका अधिक भाग किसी सायंगेय प्रकार के समान दिखाई देगा, परंतु यदि उत्तरांग ठीक तरह से प्रबल रखा जाए, तो सायंगेयत्व सहज में ही कम हो सकता है । विभास का वादि स्वर धैवत माना गया है । इस राग में पंचम स्वर भी अच्छा चमकदार रहता है । विभास के यह प्रकार में कुछ–कुछ देशकार और मारवा के मिश्रण जैसा दिखेगा । परंतु देशकार में 'ध, प' यह टुकडा रागवाचक माना गया है जो विभास में नहीं होता । यहाँ पंचम लगाने की क्रिया प्राय: भटियार, भंखार के समान ही कीया जाएगा । परंतु

बीच–बीच में 'ग प, प ध' यह टुकड़ा लगाया जाए तो वह एक स्वतंत्र परिणाम पाया जाएगा । गुणी लोग कहते है कि इस विभास में 'ग प', 'म ध' ये स्वर संगतियाँ अवश्य ध्यान में रखने चाहिए । यह राग का छोटा–सा चलन कुछ इस प्रकार कर सकते है : 'सा, ऩि, रे, ग, प ग, रे सा, ग प, प ध, म ध, म ग, प ग, रे सा । यहाँ दोंनो संगतियाँ संक्षेप में बताई गई है । पूर्वांग में अधिक समय तक नहीं रहना है अन्यथा सायंगेयत्व उत्पन्न होगा । थोड़ा–सा 'ऩि, रे ग, प ग, रे सा, सा, रे सा, ध़, म, ध़ सा एसा किया जा सकता है परंतु वह भी बहुत ध्यानपूर्वक करना पड़ेगा ।

इस राग में 'ग प' तथा 'म ध' की स्वरसंगतियाँ बहुत सुंदर प्रतीत होती है । पंचम पर विश्राम लेने से इस राग में गंभीरता दिखाई देने लगती है । देशकार तथा गौरी का मिश्रण इसमें पाया जाता है । ध्यान रहे कि एक राग विभास और है, जो कि भैरव ठाठ के अंतर्गत आता है, किंतु वह औड्डव स्वरूप कोमल रे ध लगनेवाला राग है, अतः इस राग से उसका नाम के अतिरिक्त अन्य कोई संबंध नहीं है ।

यह चलन राग की सौंदर्यता को दर्शाता है : 'ऩि, रे ग, प ग रे सा, सा ध़, म़ ध़ सा, रे सा, रे ग, प ग, प, ध, म ग, प ग, रे सा । मंद्र–सप्तक में : 'म़ ध़ सा, रे सा, ऩि रे ग, रे सा, सा ध़, रे सा, ऩि, रे ग, प ग रे सा ।' किन्तु इतना करके राग के मुख्य भाग की ओर लौटना चाहिए, जैसे – 'ग प, प ध, म ध म ग, म ध सां, म ध, म ग, प ग, रे सा, सा ध़ सा, रे ग रे सा, रे ग, प, प ध, म ध म ग सां, म ध म ग, प ग, रे सा, ऩि, रे ग, प ग, रे सा ।'

राग का उत्तरांग : 'म ध सां, सां, नि रें सां, नि रें गं, पं गं रें सां, सां रें सां, ध, म ध, म ग, म ध सां, म ध म ग, प ग, रे सा । ऩि, रे ग, प ग, रे सा ।'

यह राग के अध्ययन समय शोधार्थी को यह ज्ञात किया कि इस राग का बड़ा विचित्र चलन है । कोई इस विभास को वराटी का प्रातगेय समझते है । कोई कहेता है कि इस राग का चलन कुछ–कुछ साजगिरी – जैसा लगता है । साजगिरी का उठान इसी तरह से होता है, परंतु इसमें दोंनो मध्यम और दोंनो धैवत लगते है । वराटी में 'प ध ग, प, प ध, म ध म ग, म ग रे सा' ऐसा उठान दिखता है । जो गायक विभास में देशकार का अंग अधिक बढ़ाकर रखते हैं, वे पंचम का उपयोग

अधिक करते है । इस प्रकार का छोटा–सा चलन कुछ ऐसा कर सकते है : 'प ग प, प ध, म ध म ग, प ग रे सा, नि़ रे ग प ग रे सा, प प ग रे, प ग रे सा रे सा नि़ ध़, म़ ध़ म़ सा, सा, नि़ रे ग, म ग रे सा, प ग प । प प ग ग ग प प ध ध, म ध, म ध, नि, ध नि, प, प प ग प ग रे सा, म़ ध़ म़ सा, सा रे सा, नि़ रे ग, म ग रे सा, प ग प ।'

इसमें देशकार और मारवा मिले हुए दिखाई देंगे । देशकार में 'ध प' यह योग नहीं देखा जाएगा क्योंकि वह इस राग को शोभा नहीं देगा ।

'प ध, म ग, प ग, रे सा' यह विभास की एक छोटी–सी पकड़ है और संशय निवृत्ति के लिए 'ग प, प ध, म ग, प ग रे सा' एसा किया जा सकता है । इस विभास के मध्य–सप्तक में 'नि सां, ध नि सां' यह टुकड़ा टालने का प्रयत्न करना पड़ेगा । इसके आने से कदाचित् सोहनी – जैसा प्रकार होना संभव है । परंतु प्रात:काल के अधिकतर रागों में उत्तरांग के उठान में 'म ध सां' ऐसा नहीं होगा । कुछ स्थानों पर निषाद अधिक प्रमाण में दिखाई देगा किन्तु एकत्र स्थूल नियम उसी तरह का रहेगा । विभास में विश्रांति स्थान 'सा, ग, प, ध' इन्हें माना गया है । 'चतुर' पंडितने विभास राग का वर्णन कुछ इस तरह समझाया है :

मारवामेलकोत्पन्नो विभासः श्रूयते क्वचित् ।
संपूर्णो गीयते प्रातरंतिमांगप्रधानकः ॥
धैवतस्यात्र वादित्वं संवादित्वं तु गस्य तत् ।
गपयोर्मधयोश्चापि संगती रक्तिकारणम् ॥
न्यसनं पंचमे नित्यं गांभीर्य दर्शयेन्महत् ।
विलंबितलये गीते रागेऽस्मिन् विधिसंयुते ॥[(1)]

मारवा ठाठ के रागों के लिए यह कुछ टिप्पणी उपयोगी साबित होगी, इसकी सहायता से ठाठ को समजने में आसानी होगी ।

एवं च मारवामेले रागा द्वादश ईरिताः ।
सायंगेया भवेयुः षट् प्रातर्गेयाः षडीरिताः ॥

पूरिया मारवा जैता गौरा साजगिरी तथा ।

वराटीसहिता रागाः सायंगेया बुधैर्मताः ॥

ललितश्च पंचमश्य भटियारो विभासकः ।

भंखारः सोहनीत्येता रागा प्रातर्मता बुधैः ॥

गौर्यङ्गाः पूरियांगाश्च सायंगेया व्यवस्थिताः ।

ललितांगास्तथा चोक्ताः सोहन्यंगाः प्रभातगाः ।

सायंर्गेयेषु पूर्वांगं प्रबलं गुणिसंमतम् ।

प्रातर्गेयेयु प्राबल्यं ह्यु त्तरांगस्य निश्चितम् ॥

स्थूलदृष्टया मता एते नियमा अध्वदर्शिनः ।

तत्र तत्र विशेषास्तु द्रष्टव्या मर्मवेदिभिः ॥[2]

यह मारवा ठाठ से उत्पन्न हुए रागों के बारे में टिप्पणी दि गई है जो की राग को समजने में उपयोगी होगी ।

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 346
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 347

तीव्र मध्यम और तीव्र धैवत लगनेवाले विभास प्राचीन संस्कृत – ग्रंथकारों ने नहीं दिया । 'अहोबल' ने अपने ग्रंथ 'पारिजात' जो प्रकार बताया है वह कुछ इस तरह बताया है :

मस्तुतीव्रतरो यस्मिन् गनी तीव्रौ रिधौ मतौ ।

कोमलौ न्यासघोपेते विभासे गादिमूर्च्छने ॥

आरोहे मनिवर्ज्यत्वं गपांशस्वरसंयुते ।[1]

यह प्रकार दक्षिण के 'गौली' राग जैसा दिखाई देगा । गौली का आरोहावरोह 'सा रे़ ग प ध़ सां, सां नि ध़ प ग रे़ सा' ऐसा पंडित अहोबल द्वारा दर्शाया गया है ।

वैसे तो विभास को कोई प्रकार नहीं है, परंतु पंडित शिंगराचार्यने अपने गायक लोचन दो–तीन प्रकार बताए है । वह कुछ इस प्रकार है :–

(१) शुद्ध रसाली – सा ग म प प ध सां । सां ध प म ग रे़ सा ।

(२) कंनडमारूच – सा ग म प ध नि सां । सां नि ध प म ग सा ।

(३) सुखध्वनि – सा ग म प नि ध सां । सां ध नि प म ग रे सा ।

'रागमाला' में पुण्डरीक ने ऐसा कहा है :

गौरांगः पंकजाक्षः सुशवरवसनः भालकाश्मीरबिंदू–

र्मल्लीस्त्रग्भूष्यकंठश्चतुरवरगिरं कीरमध्यापयन् यः ।

मेले तातस्य जातस्त्वधिकप्रथममः सत्रिकोऽपः शठोडसौ

स्वेच्छागामी प्रभाते वदति विनयतां श्रीविभासाख्यरागः ॥[2]

यहाँ 'तात मेल' यानि देशकार का ठाठ माना जा सकता है । इस विभास में पंचम वर्ज्य है, तो शायाद यह प्रकार मान्य न माना जाएगा ।

'राग–मंजरी' में ऐसा कहा गया है – विभासः सत्रिकः पूर्णः पहीनः शुद्धमादिकः ॥

'नृत्य–निर्णये' – औडुवो मनिहीनत्वाद्विभासो गादिरिष्यते ।

'राधागोविन्दसंगीतसार' में प्रतापसिंह ने विभास के बारे में चर्चा की है जो कुछ इस प्रकार दिखाई देगा ।

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 348
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 348

रे ग रे नि रे ग । प ग म ध म ग ।

रे सा रे सा । म ध (अन्तर) सा ।

इस प्रकार में तीव्र ऋषभ और 'उत्तरी' निषाद, ये स्वर में मतभेद पाए गए है । जब की उत्तर की ओर के एक उर्दू–ग्रंथ में विभास के स्वर ऐसे दिए हैं :–

सा, कोमल रे, शुद्ध ग, (म वर्ज्य), प शुद्ध, ध शुद्ध, नि वर्ज्य ।

दो प्रकार के विभास को माना गया है, जो समझने के लिए उत्तम और सरल है । भैरव ठाठ का विभास जिसमें म–नि–हीन औडव मानते हैं और इस मारवा ठाठ का विभास संपूर्ण मानते है, यह आवश्यक तथ्य ध्यान में रखना चाहिए ।

क्षेत्रमोहन स्वामी विभास में 'रे, ध' तीव्र मानते हैं और मध्यम वर्ज्य करते है । उन्होंने अपना प्रकार कुछ इस तरह बताया है :–

सा रे ग प, प ध, प, ध नि ध, प, सां, प ध नि ध प, ध प, ग प ग रे सा, ऩि ऩि सा, रे सा । ग ग प ध सां, सां रें सां नि सां नि रें गं, पं गं, रें गं रें सां, ध नि ध प, ग रे ग प ध सां, प ध नि ध प, ग प ग रे सा, ऩि ऩि सा, रे सा ।

नादविनोदकार जी ने विभास में निषाद वर्ज्य कीया है, परंतु रे कोमल और म ध तीव्र मानते है । उसका चलन कुछ इस प्रकार हो सकता है : सा, ध़ सा, रे प ग रे सा, सा ध ध प, ध, सा ध ध प, ग ग रे सा, सा रे ग ग रे रे सा । ग ग प प, म ध प ध सां ध सां ध प म ग रे सा, ध प ग ग रे रे रे सा ।[1]

Capt. Willard द्वारा दिये हुए कोष्ठक में विभास के घटक अवयव 'बिलावल, गुर्जरी और आसावरी' मिलते है ।

रे कोमल, मा तीव्र लखि, धग संवाद बनाय ।

ठाठ मारवा से प्रकट, राग विभास सुहाय ॥

थाट :- मारवा

विकृत स्वर :- रे, म

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 350

वर्जित :- ०

जाति :- संपूर्ण

वादी–संवादी :- ध, ग

गायन समय :- प्रातःकाल

आरोह :- सा रे ग म ग प ध निध सां

अवरोह :- सां निध मध मगऽसा

पकड़ :- ऩि, रेग, मग, रेसा, गपध, मग, पग, रेसा

राग विभास (मारवा थाट) – झपताल

स्थाई : राजन के राजा नर पति सिर ताज महाराज राजा श्री राम चन्द्र ।

अंतरा : अधम उधारन जन प्रति पालन, तूही आदि अन्त सकल काटे भव फन्द ।

विभास राग एक प्राचीन राग माना गया है और भैरव थाट अंतर्गत माना गया विभास अति प्रचलन में पाया गया है । प्राचीन ग्रंथों में पूर्वी और भैरव थाट का प्रचलन ज्यादा देखा गया है । वैसे देखा जाए तो मारवा थाट की प्रकृति गंभीर और मूल रस भक्ति रस, करूण रस तथा विरह रस माना गया है । प्रस्तुत बंदिश के रस की चर्चा करे तो रचनाकार के अनुसार यह बंदिश को भक्तिरस के अंतर्गत माना जाएगा । क्योंकि प्रस्तुत बंदिश में पूर्ण पुरुषोत्तम प्रभु श्री रामचंद्रजी की प्रसंशा की गई है । प्रभु श्री रामचंद्र का वर्णन किया गया है, जैसे की वे राजन के भी राजा है, वह महाराज है जो प्रजा का पालन कर रहे हैं । जिनके शिर पर ताज सवार है और प्रजा का प्रतिपालन कर रहे हैं । एक आदर्श राजा है जो अपनी प्रजा का ख्याल रखते है और वहीं अपनी प्रजा के सारे कामों को पार लगाता है, ऐसे ही राजा प्रजा के लिए एक भगवान के समान साबित हुआ है । जैसे ही भगवान अपने भक्तों की रक्षा करता है, वैसे ही यहाँ राजा अपनी प्रजा की रक्षा कर रहा है और ध्यान रख रहा है । इस राग की 'ग प' तथा 'म ध' की स्वरसंगति बहुत ही सुंदर प्रतीत होती है । जो राग के सौंदर्य को ओर भी बढ़ाता है एवं रस और भाव उत्पन्न करने की क्षमता रखता है । रचनाकार के अनुसार प्रस्तुत बंदिश को देखे तो यह एक भक्ति सभर रचना है, जो भक्तो द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचंद्रजी के स्वरूप का एवं उनके गुणगान किया है ।

स्थाई (1)

प	ग	प	ध	ध	प	ग	रे	–	सा
रा	ऽ	ज	ऽ	न	के	ऽ	रा	ऽ	जा
सा	ध़	सा	–	सा	प	ग	प	–	प
न	र	प	ऽ	ति	सि	र	ता	ऽ	ज
प	ग	प	ध	ध	(सां)ध	सां	रें	–	सां
म	हा	रा	ऽ	ज	रा	ऽ	जा	ऽ	ऽ
सां	प	ध	–	ध	प	ग	रे	–	सा

श्री	ऽ	रा	ऽ	म	च	ऽ	न्द्र	ऽ	ऽ
x		२			०		३		

अंतरा

सां	ध	प	ग	प	सां ध	सां	रें	–	सां
अ	ध	म	ऽ	उ	ध	ऽ	र	ऽ	न
सां	ध	सां	–	रें	गं	–	रें	–	सां
ज	न	प्र	ऽ	ति	पा	ऽ	ल	ऽ	न
सां	प	ध	–	ध	रें	रें	सां	सां	सां
तू	ही	आ	ऽ	दि	अ	न्त	स	क	ल
सां	प	ध	ध	प	प	ग	रे	–	सा
का	ऽ	टे	भ	व	फ	ऽ	न्द	ऽ	ऽ
x		२			०		३		

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अनिभव गीतांजलि (भाग–५) / पृ. 304

4.4.1.8 राग : सोहनी

राग सोहनी को मारवा थाट का राग माना गया है । कोई कोई गवैये ऐसे भी कहते है कि, सोहनी में एक कोमल मध्यम ही लगना चाहिए, तो कोई कहते है की दोनो मध्यम लगाने को भी कहते है । यह राग रात्रि का अंतिम प्रहर का है । अत: यदि इसमें कोई दोनो मध्यम लगाए तो दोष नहि कह सकते । कोमल मध्यम और तिव्र मध्यम लगनेवाले संधिप्रकाश थाट का नाम दक्षिणी पद्धति में 'सूर्यकान्त' अथवा 'वेगवाहिनी' से मिलता है । सोहनी में तीव्र मध्यम को महत्व देते है । बात दोंनो मध्यम की कि जाए तो तिव्र मध्यम का उपयोग ज्यादा दिखाई पड़ता है । जैसे की,

सां, नि ध, नि ध, म ग, म ध नि सां, रें रें सां, नि सां, नि ध, म ध, नि नि ध, म, ग, म ग रे सा, ऩि सा ग, म, ध, म, ग, म ध, म ध, नि सां रें सां, नि नि ध, सा ग म ध नि सां,

नि सां, नि सां, रें सां, गं रें सां, सां रें सां, म ध सां, गं सां, मं गं सां, म ध नि सां, नि ध म ग, म ग, रे सा, ऩि सा ग म, ध, ग म, नि ध ग म, ध नि सां, गं मं गं ।

'ग म ध नि सां ' ऐसा करने से गायक या वादक को अड़चन आ सकती है । परन्तु कई विद्वानों का कहना है कि वह मध्यम यह सुचित करता है कि आगे ललितांग दिखाई पड़ेगा । ललितांग में दोंनो मध्यम है, यह ध्यान रखना आवश्यक है । दोनो मध्यमवाला सोहनी कुछ इस तरह से प्रतीत होगा : सां, नि ध, म ध सां, नि ध, ग, म ग, म ध नि सां रें सां, नि सां, म ध नि सां, रें रें सां, गं रें सां, नि सां नि ध, म ध, सां नि ध, म ग, म ग रे सा, ऩि सा ग, म ध नि सां, रें सां, गं मं गं, रें सां, नि ध, म ध नि सां, नि ध म ग, नि ध ग, म ग रे सा, ऩि सा ग, म ग, म ध नि ध, म ग, म ध नि सां, नि ध म ग, म ग रे सा ।[(1)]

शोधकर्ता ने इस राग का अध्ययन करते समय यह जानकारी प्राप्त की है कि, कहीं गवैये ऐसे भी है जो एक मध्यमवाला प्रकार मानते है । इस प्रकार में जो पहेली मुख्य बात ध्यान रखने योग्य है की इसमें तार-षड्ज अच्छी तरह से चमकना चाहिए । म ध नि सां, रें सां – ऐसा करते ही सोहनी का रूप दिखाई देगा । 'ग म ध ग म ग, म ग रे सा' यह टुकड़ा साधारण होगा । वह है 'नि ध, ग' इसे पुरिया में नहीं लगाना चाहिए । धैवत और गांधार की संगति बिलकूल स्वतंत्र है ।

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 287

सोहनी का वादी स्वर तार-षड्ज को मानते है पर कोई धैवत को भी मानते हैं । संवादी गांधार पाया गया है । सोहनी में पंचम वर्जित है इसलिए इसकी जाती षाड्व है । कुछ लोग सोहनी में 'नि ध नि सां, नि ध, ग' इस टुकडे से पहचानते है । इस राग में मंद्र सप्तक में जाने की विशेष आवश्यक्ता नहि देखी गई । सोहनी एक बहुत मधुर और लोकप्रिय राग माना जाता है और वह अनेक गायकों को आता है । इस राग के आरोह में ऋषभ बिलकूल दुर्बल रहता है । कोई उसे वर्जित भी करते है । सोहनी का सारा वैचित्र्य उत्तरांग में होने के कारण आरोह में ऋषभ छोड़कर 'ऩि सा ग ग, म ध नि सां' ऐसा करना गायकों को अधिक सुविधाजनक लगता है । प्रात:काल के समय तार-षड्ज का वैचित्र्य राग में बहुत खिलता है ।

सोहनी का प्रारंभ या तो उठना एक ही स्थान से होना चाहिए, ऐसा प्रतिबंध तो नहीं है परंतु एक सीधा प्रकार कुछ इस तरह से पाया गया है : ग, म ध नि सां, रें रें सां, नि ध नि सां, नि ध, ग, म ध, ग म ग रे सां, ऩि सा ग ग, म ध सां । इस तरह से शुरू में ही राग स्पष्ट दिखाई देगा । सोहनी का तीव्र मध्यम श्रोताओं का मन विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित नहीं करता उसको उचित स्थान देना बड़ी कुशलता का कार्य माना गया है । पंचम वर्ज्य होने के कारण धैवत तक पहुचने में अड़चन तो होगी, किन्तु खुला हुआ मध्यम लगाते ही तत्काल वह अपना स्वतंत्र रूप उत्पन्न कर ही देगा ।

इस राग का अध्ययन करते समय शोधार्थी को यह ज्ञात हुआ कि, पूरिया में मंद्रवधी गांधार स्वर है और सोहनी में तारअवधी मध्यम को मानते है । सोहनी के मंद्र स्थान में कोई नहीं गा सकता वह बात नहि है, परन्तु अगर ऐसा हो तो श्रोताओं को पूरिया का भास हो सकता है । 'ऩि रे ग, ऩि रे सा' यह टुकडा का उपयोग करके पूरिया हटाने का प्रयत्न कर सकते है । कोई गायक सोहनी में कोमल धैवत लगाते हुए भी पाए गये है, परन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं माना गया है ।

सोहनी को आधुनिक प्रकार माना गया है । सोहनी के निकटवर्ति अन्य राग हिन्डोल, मारवा, पंचम आदि है । हिन्डोल में ऋषभ नहीं है और अवरोह में निषाद असत्प्राय: है । मारवा में संध्याकालीन रंग, ऋषभ की वक्रता, म ध की संगति, निषाद का दुर्बल्य और तारस्थान का सीमित प्रयोग होता है । सोहनी में हिंडोल और मारवा का थोड़ा सा चलन दिखाई भी दे तो निषाद उन दोनो रागों का भ्रम दूर कर सकता है । यह राग अर्वाचीन प्रकार माना गया है, तो यह राग संगीत रत्नाकर, दर्पण, कलानीधि, रागविबोध, चंदोदय, राग माला, तरंगीणी और समयसार इनमें से एक भी ग्रंथ में नहि मिलेगा । क्षेत्रमोहन स्वामी ने सोहनी का संस्कृत उदाहरण देकर एक टीप्पणी में कहा है: सोहनी का नाम हमें किसी भी प्राचीन संस्कृत ग्रंथ में दिखाई नहीं देगा, केवल शब्दकल्पद्रुमकाल में इसे दिया है । यह राग नाम संस्कृत है या प्रकृत इसका निर्णय अभि भी स्वीकार नहीं हुआ । किन्तु आजकल सभी गायक पंचम वर्जित करके इसको षाड्व मानते है ।

सोहनी का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है :

'ध़ नि़ सा, नि़ ध़, म़ ध़, नि़ ध़, म़ ग़, म़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, ग म ग, सा रे॒ सा, नि़ सा, रे॒ सा, ग सा, रे॒ सा, नि़ सा, रे॒ नि़ ध़, म़ ग़, रे॒ सा, नि़ सा, ग़ म़ ध़, म़ ध़, नि़ सा, ग म ग; सा रे॒ सा' । अंतरा : 'ग म ध म ध नि सां, सां नि सां, रें॒ गं रें॒ सां, नि सां रें॒ नि ध म ग, म ध नि ध म ग, सा रे॒ सा' ।

गहन अध्ययन बाद शोधार्थी को यह मालुम पड़ा की, सामवेदी गायक ब्राह्मण अपने मंत्र इस सोहनी के स्वरों में गाते है । विवाह व यज्ञोपवित संस्कारों में गाए जाने वाले मंगलाष्टक इस राग में ज्यादातर गाए जाते हैं । सोहनी के विषय में 'प्रतापसिंह' ने एक बहुत दिलचस्प युक्ति बताई है, वह यह है कि सोहनी में धैवत 'अंतर' कहते है । अर्थात् वह न तो तिव्र है और न तो कोमल । राग वर्णन में उन्होंने ऐसा कहा है कि, 'शिवजीने अपने मुख सों परजसंकिर्ण मालवि राग गाइके वाको सोहनी नाम कीनो, स्वरूप।' गोरो जाको रंग है । श्वेत वस्त्र पहेरे है और ताल हाथ में है । ऐसी स्त्री जाके संग है हाथ में जिनक पिनाक बाजो है । नाना प्रकार कें आभुषण पहेरे है और मधुर बचन कहे है, और राजाने सभा में शोभायमान है । कुंडल जाके कानन में बिराजमान है और मदसो छवायो है । शास्त्रों में तो यह छः स्वर में गायो है । ग म ध नि सा रे ग । याते षड्ज है याको रात्रि के तिसरे पहर में गवायो । याको रात्रि के तीसरे पहर में गावनो । ग म ध नि सा नि ध म ग म । ग रे॒ सा नि ध नि सा ग म ग। म ध ग म ग रे॒ नि सा ।"

इस राग का जो प्रकार प्रचलन में है वह की इस तरह से माना गया हैं :

मारवामेलसंजाता सोहनी लक्ष्यसंमता ।
आरोहे चावरोहेऽपि परिक्ता कीर्त्यते सदा ।
उत्तरांगप्रधानत्वे वादित्वं धैवते भवेत् ।
अमात्यसंनिभो गः स्याद्गायनं शेषयामके ॥
प्रयोगो दृश्यते शुद्धमध्यमस्य क्वचिन्मतः ।
संगतिर्धगयोर्नित्यं प्रस्फुटं रूपमादिशेत् ॥(1)

इसी मत के अनुयायी और भी आधार पाए गए है, जैसे कि,

कल्पद्रुमांकुरे :–

यत्रस्याद्दषभो मृदुर्निधमगास्तीव्राः स्वराः पंचमो ।

वर्ज्यः स्यादथ मध्यमो निगदितः क्वापि क्वचित्कोमलः ॥

वादी धैवत उच्यते सहचरो गांधारकः कथ्यते ।

रात्र्यामन्तिमयामके सुमधुरं सा गीयते सोहनी ॥

मृदुरिरितरे तीव्रा वादिसंवादिनौ धगौ ।

द्विमध्यमा पवर्ज्या च सोहन्यपररात्रगा ॥

– चंद्रिकायाम्

तीवर सब, कोमल रिखब, पंचम बरजित होई ।

धग वादी – संवादी है, कही सोहनी सोइ ॥[2]

– चंद्रिकासार

राग सोहनी का राग विस्तार कुछ इस प्रकार कर सकते है ।

ग म ध, ग म ग, रे सा, नि़ सा, ग ग, म ग, म ध नि सां, ध नि सां, रें सा, नि ध, म ध नि ध, ग, नि नि ध, सां नि ध, म ग, ग म ध ग म ग, सा ग म ध, नि ध, म ग, म ग, रे सा,

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 302
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 302

सा रे सा । सा सा ग ग, म ग रे सा, ग ग म ग, नि़ सा ग, ग, म ध नि सां, रें रें सां, सां नि ध, म ध, रें सां, नि ध, नि ध, ग, ग म ध ग म ग, रे सा, नि़ सा ग ग, म ध नि सां, ध नि सां, रें रें सां, गं रें रें सां, मं गं रें सां, सां नि ध, म ध, नि ध, म ग, ध म ग, म ग, रे सा, सा रे सा । मंद्र–सप्तक में विस्तार करना हो तो इस प्रकार करो – सा नि़, ध़, म़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, रे रे सा, नि़ ध़, सा ग, म ग, रे सा, नि़ सा ग, म ग, म ध, नि ध, म ग, ग म ध ग म ग, सां नि ध, म ग, ग म ध ग म ग रे सा ।[1]

इस राग का आविर्भाव तथा तिरोभाव अन्य रागों द्वारा कुछ इस प्रकार हो सकता है :

राग पूरिया द्वारा तिरोभाव –

मूल राग की प्रतिष्ठा – ध नि सां रें नि सां नि ध नि

राग पूरिया द्वारा तिरोभाव – नि म ऽ ग

मूलराग द्वारा आर्विभाव – म ध नि सां रें सां

राग हिंडोल द्वारा तिरोभाव –

मूलराग सोहनी की प्रतिष्ठा – ध नि सां रें नि सां नि ध

राग हिंडोल द्वारा तिरोभाव – म ध, सां ध, म ग

मूलराग द्वारा आविर्भाव – म ध नि सां, रें सां

राग मारवा द्वारा तिरोभाव –

मूलराग सोहनी की प्रतिष्ठा – सां रें नि सां, नि ध

राग मारवा द्वारा तिरोभाव – ध, म ग रे, सा

मूलराग द्वारा आविर्भाव – ऩि सा ग म ध नि सां (2)

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 303
2. बनर्जी, गीता / राग शास्त्र (भाग–१) / पृ. 149

तीवर मा, कोमल ऋषभ, पंचम वर्जित मान ।

धग वादी–संवादी तें, कियो सोहनी गान ॥

थाट	:–	मारवा
विकृत स्वर	:–	म, रे
वर्जित	:–	प
जाति	:–	षाडव
वादी–संवादी	:–	ध, ग
गायन समय	:–	रात्रि का अंतिम प्रहर

आरोह :- सा ग म ध नि सां

अवरोह :- सां नि ध म ध म ग रे सा

पकड़ :- सा, निध, निध, ग, मधनिसां

यह उत्तरांगवादी राग है । तार-षड्ज इसमें विशेष रूप से चमकता हुआ रखने से राग की रंजकता बढ़ती है । आरोह में ऋषभ दुर्बल रहता है । इस राग की प्रकृति पूरिया नामक एक सायंगेय राग के समान दिखाई देती है । कुशल गायक सोहनी में कहीं-कहीं कोमल (शुद्ध) मध्यम का प्रयोग करके इसमें वैचित्र्य उत्पन्न कर देते हैं । कोई गायक सोहनी को सवेरे की पूरिया भी मानते हैं ।

राग सोहनी : त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : काहे अब तुम आये हो, मेरे द्वारे सौतन संग जाग,
रस पागे अनुराग पागे, काहे... ।

अंतरा : झुठी-झुठी बतियां करो ना मनरंग अब
वहिं जाओ जिन जुवती सन अनुरागे ॥

सोहनी राग एक अत्यंत ही प्रचलित और आकर्षित राग माना गया है । सोहनी अपने आप में ही एक रागिनी है, श्रृंगार रागिनी है और यह संयोग रस एवं वियोग रस को दर्शाता है । यह राग की ज्यादातर रचनाएं श्रृंगार रस में पाई जाति है, जिसमें नायक-नायिका का वर्णन होता है । यह प्रस्तुत बंदिश में भी वियोग रस का प्रदर्शन कर रही हैं, जिसमें रचनाकार ने नायिका को अपने नायक से रूठी हुई दिखाई है । नायिका अपने नायक के लिए सज्ज-श्रृंगार करके बैठी है और नायक सौतन के पास गया है । जो नायिका को पसंद नहीं है और इसी कारण वह अपने नायक से गुस्से से सवाल कर रही है कि अब तुम मेरे पास क्युं आये हो, जब तुम्हें सौतन के पास ही जाना है और रहेना है । बंदिश के तार का षड्ज बंदिश में नायिका के मन का भाव प्रदर्शित कर रही है और अपने नायक से फरियाद कर रही है कि, झुठी बातें जो नायक ने अपनी नायिका के साथ की है या तो नायक जब अपनी नायिका को मनाते हुए जो भी बातें कहीं है वह सब नायिका को झुठ लग रहीं है । नायक को गुस्से से फरियाद करते हुए कह रही है कि, तुम सौतन के पास जा के ही रहो, मेरे पास आने की

आवश्यकता नहीं है, जिसमें वियोग रस अपने आप में प्रकट होना स्वाभाविक है । यह राग दोंनो श्रृंगार रस तथा वियोग रस उत्पन्न कर रहा है । 'म ध सां रे॒ सां' स्वरसंगति यह राग में और भी रस भर रही हैं । इस तरह से यह बंदिश के रचनाकार द्वारा शाब्दिक और स्वरसंगति द्वारा रस उत्पन्न होता दिख रहा है ।

स्थाई (तीनताल)[1]

	सां	–	सां	सां	नि	(ध)म	ध	(ध)सां	–	–	–	नि	ध	नि	ध
ऽ	का	ऽ	हे	अ	ब	तु	म	आ	ऽ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	हो	ऽ
0				३				X				२			
	(म)ग	–	म	ग	रे॒	–	सा	(नि॒)सा	सा	सा	(म)ग	ग	(ध)म	–	ग
ऽ	मे	ऽ	रे	द्वा	ऽ	ऽ	रे	सौ	त	न	सं	ग	जा	ऽ	गे
0				३				X				२			
(ध)म	ग	(ध)म	ध	सां	–	–	–	(ध)नि	ध	नि	(ध)म	–	ग	(म)ग	म
र	स	पा	ऽ	गे	ऽ	ऽ	ऽ	अ	नु	ऽ	रा	ऽ	गे	पा	ऽ
0				३				X				२			
ग	सां	–	सां												
गे,	का	ऽ	हे												
0															

1. बनर्जी, गीता / राग शास्त्र (भाग–१) / पृ. 149

अंतरा

(ध)म	ध	(ध)म	ध	नि	नि	सां	सां	सां	रें॒	सां	रें॒	नि	सां	ध	नि
झु	टि	झु	टि	ब	ति	यां	क	रो	ना	म	न	रं	ग	अ	ब
0				३				X				२			
रें॒	म	गं	रें॒	सां	रें॒	नि	सां	नि	ध	ध	(ध)सां	नि	(ध)म	–	ध
व	हिं	जा	ओ	जि	न	जु	व	ति	स	न	अ	नु	रा	ऽ	गे।
0				३				X				२			

4.4.2 मारवा थाट के अप्रचलित रागों का अध्ययन एवं बंदिशें

भारतीय संगीत परंपरा अनादिकाल से विद्यमान है । इस परंपरा के समंदर में निलम, हिरा, माणेक, मोती जैसे अनेकानेक राग छीपे हुए है । राग भारतीय शास्त्रीय संगीत की अमूल्य धरोहर है । समय के बहाव के साथ उसमें बदलाव आए हैं । कितने ही राग चलन में है तो कितने लुप्त होते जा रहे हैं । इस महा शोधनिबंध के इस प्रकरण में लुप्तप्राय: रागों को प्रसिद्ध करने का प्रयास किया है ।

यहाँ मारवा थाट के ऐसे रागों का विवरण किया है, जो कि गायकों – वादकों द्वारा कम गाए–बजाए जाते है । जिसका प्रचलन कम है और अप्रचलित माने गए है । कई गायक या वादक ऐसे रागों को कठीन समजते है, क्योंकि ज्यादा मतमतांतर के कारण कम प्रचलन में है इसी के कारण कम प्रस्तुत किए गये है । एक ही राग को अलग–अलग घराने में अलग–अलग तरीके से पेश करने का ढंग दिखाई पड़ता है । कई घराने ऐसे भी है जो अप्रचलित रागों को गाते या बजाते है, परंतु वह अपने घराने तक ही सीमित रखते है । ऐसे ही मारवा थाट के कई अप्रचलित रागों की खोज़ करके शोधार्थीने यहाँ अपने महा शोधनिबंध में इकट्ठा करने का प्रयास किया है ।

4.4.2.1 राग : पंचम

राग पंचम के दो प्रकार दिखाई देते हैं । एक तो पंचम वर्जित षाडव प्रकार है, जिसका वर्णन ऊपर दिया जा रहा है और दूसरा संपूर्ण है । दोनों ही प्रकार ललितांग के हैं, क्योंकि दोनों में ही दोनों मध्यम प्रयुक्त होते हैं । संपूर्ण जाति के पंचम राग का उठाव प्राय: ग रे सा, ऩिरेग, म, प, मध, मग, रेसा इस प्रकार पंचम लगाकर किया जा सकता है ।

यह राग बहुत ही प्राचीन माना गया इसका वर्णन कई ग्रंथकारोंने किया है । पंचम के भिन्न–भिन्न प्रकार संस्कृत ग्रंथो में दिखाई पडते है : जैसे शुद्धपंचम, पंचम, पूर्ण–पंचम, ललितपंचम, हिंडोलपंचम, दिव्यपंचम, कोलिकपंचम, भूपालीपंचम, आम्रपंचम, अधिपंचम, धातुपंचम, भिन्नपंचम, मालवपंचम, वसंतपंचम इत्यादि । हिन्दुस्तानी पद्धति में यह प्रचलित है, साथ में यह भी कह सकते है कि पंचम राग बिलकुल अप्रसिद्ध है, अपितु यह राग देखने में हमेशा नहीं आता । गायक इस राग को भिन्न भिन्न तरह से गाते हुए पाए जाते है । गायको के भिन्न भिन्न घराने होने के कारण ऐसा

होना स्वाभाविक है । पंचम राग के संबंध में मतभेद है । एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है की कई गायक थोड़ा बहुत ललितांग सम्मिलित करते हुए पाए गये है ।

राग के अध्ययन दौरान शोधकर्ता ने यह ज्ञात किया कि, पंचम में दोनों मध्यम लगते है । प्रात:काल यह अंग बहुत ही स्वतंत्र और विचित्र प्रतीत होता है । यह अंग लगाना हो तो उसे 'नि़ सा, म, म, म ग' यह टुकडा जीवभूत समझकर लगना पड़ेगा । कोई पंचम राग में दोनों मध्यम लगते है और पंचम स्वर वर्जीत करते है । कोई दोनो मध्यम परंतु पंचम स्वर वर्जीत नहीं करते और धैवत कोमल रखते है । कोई–कोई दोनों मध्यम, पंचम तथा तीव्र धैवत लगाते है । कोई दोंनो मध्यम लगाकर ऋषभ को छोड़ देते है । प्रचलित प्रकारो में जो संधिप्रकाश रूप में है उन रागों को अधिकतर गायक प्रात:कालीन माना गया है । इस राग में बहुधा मध्यम प्रधान होने से धैवत राग हानि नहीं कर सकता । ललितांग बहुत ही प्रबल होगा और कोमल मध्यम अपना प्रभाव दिखाई पड़ता है । इन प्रात:कालीन रागों को 'गमनश्रम' अथवा 'मारवा ठाठ' में रखने की अपेक्षा सूर्यकान्त मेल में रखना अधिक उचित रहेगा, परंतु हिन्दुस्तानी पद्धति में इस ठाठ का प्रचार नहीं है तथा राग में दोंनो मध्यम आते है । इस लिए ठाठों का उलट–फेर करना आवश्यक नहीं मानते । प्रभातकाल में तीव्र मध्यमय निर्बल होता जाता है, इस वस्तु को हम अस्वीकार नहीं कर सकते । कोमल मध्यम होने से पंचम स्वर का अभाव रक्ति–हानि न करके राग के वैचित्र्य को बढ़ाता हुआ पाया गया है ।

पंचम राग के दो प्रकार को स्वीकार किया गया है । पहेला प्रकार कुछ इस तरह बताया जा सकता है :

मारवामेलके जातः पंचमो लोकविश्रुतः ।

संपूर्णो मध्यमांशोऽपि नक्तं यामेंऽतिमे ततः ॥

उत्तरांगप्रधानोऽयं द्विमध्यमविभूषितः ।(1)

इस प्रकार में मारवा ठाठ के सभी स्वर है और दोंनो मध्यम पाए गये है । पंचम स्वर आने से सोहनी और ललित अपने आप ही दूर होते पाए जाएँगे ।

मुक्तत्वान्मध्यमस्यात्र ललितांगं परिस्फुटम् ।(2)

शोधकर्ता द्वारा जब यह राग का अध्ययन हुआ तो पाया कि, परज में धैवत कोमल है और इस पंचम में ललितांग नहीं है । वसंत के दो प्रकार से गाते है, परंतु तीव्र धैवत और दोनो मध्यम लगाकर जो इसे गाते है, वह इसमें पंचम वर्ज्य करते है और पंचम लगाकर गाते है, वे कोमल धैवत रखते हैं । मध्यम, गांधार की पुनरावृत्ति तथा संगति आदि सिद्धान्त अलग–अलग रहेंगे । उत्तरांग–प्रधान और दूसरा राग 'विभास' दिखेगा, परंतु उसका पंचम से मिल जाने का भय नहीं रहेगा, क्योंकि उसमें कोमल मध्यम बिलकूल नहीं है और उसका धैवत कोमल है । पंचम प्रकार कालिंगडा, परज, वसंत, सोहनी, विभास और ललित इनसे भिन्न ही रहेगा । दूसरा प्रकार है उसमें पंचम स्वर वर्जित है और थोड़ा–सा ललितांग पाया जायेगा । यदीं वह कुशलतापूर्वक ना गाया जाए तो ललित की भ्रान्ति हो सकती है । इस प्रकार में ललित के आरोह में ऋषभ लगाने की स्वतंत्रता हो और पंचम राग के आरोह में यह स्वर न लगाया जाए । दूसरे गायक इससे भी बढ़कर कहते है कि पंचम में ऋषभ बिलकूल छोड़ दे, तो संशय ही नहीं रहेगा । अवरोह में ऋषभ दुर्बल रखेंगे तो दोंनो मतों से कुछ मिलकर चल पाएंगे ।

पंचम का इकट्ठा चलन थोड़ा सोहनी अथवा किसी के मत से हिंडोल जैसा प्रतीत होगा, सोहनी और हिंडोल का उत्तरांग प्राय: एक सा प्रतीत होता है । सोहनी में निषाद अधिक स्पष्ट तो हिंडोल में धैवत अधिक स्पष्ट दिखाई देगा । कई विद्वानों के मतानुसार यह हिन्डोल और सोहनी का मिश्रण है ।

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 319
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 319

सोहनी का प्रसिद्ध रूप 'सां, नि ध, म ध नि सां, नि ध, म' यह है और ललित का टुकड़ा जो रागों में शामिल किया जाता है वह ऐसा है : 'ऩि सा, म म, म म म ग' । इन दोंनो रागों का ऐसा योग करने से वह उक्त दोंनो रागों से अलग पड़ेंगे, जिसका स्वरूप कुछ इस प्रकार दिखाई दे सकता है :–

म ध सां, सां, सां, नि ध, म ध म ग, म ग, रे॒ रे॒ सा, सा सा म, म, म म म ग, म ध सां, सां, नि ध । यहाँ पर सोहनी युक्तिपूर्वक दूर रखखा पड़ेगा और ललित ना हो वह ध्यान रखना

चाहिए । 'रें नि ध, म ध, म म ग' यह ललित का भाग है । इसे पंचम में नहीं लेना चाहिए । इससे भी स्वतंत्र रूप रखना हो तो ऋषभ वर्जित करते हुए तथा दोनों मध्यम अलग–अलग लगाना चाहिए ।

यह चलन में मारवा भाग नहीं दिखाई देगा क्योंकि मारवा पूर्वांगवादी है और उसका उत्तरांग इतना प्रबल नहीं है । उत्तरांग यदि 'म ध सां, नि ध, म ध' ऐसा प्रकार करे तो तुरंत 'म ध म ग रे, ग म ग, रे, ग रे सा' ऐसा भाग मारवा में जोड़ना पड़ेगा । मारवा में कोमल मध्यम नहीं लिया जाता है, 'म ध सां, सां नि ध' तथा 'म ध सां, रें नि ध' ये टुकडे क्रमशः सोहनी और मारवा राग का संकेत करते हुए दिखेंगे ।

राग पंचम उत्तरांग में हिंडोल का भाग दिखाई देता है । हिंडोल की छाया कम करने के लिए कोई – कोई अंतिम चरण में 'म ध सां, सां, सां नि ध नि' ऐसा करते पाये जाते है । हिंडोल का आभास और भी कम करने के लिए 'म ध, म ग म, ग ग, रे रे सा' ऐसा भी कर सकते है । पंचम राग के संबंध में मुख्य दो भेद है : (१) वह जिसमें पंचम लिया जाता है । (२) वह जिसमें पंचम वर्जित लिया जाता है ।

दूसरे प्रकार में सोहनी अथवा हिंदोल अंग से गाने का प्रचार है, उसमें ललित का एक छोटा टुकड़ा राग–भेद के लिए सम्मिलित होता है, परंतु उतना करने से वह पूर्ण रूप से ललित हो जाएगा, ऐसा आवश्यक नहीं है । पंचम का कोई भी प्रकार गाते समय जहाँ तक हो सके, ललित से इस तरह उसमें दोंनो मध्यम ना जोड़ते हुए इन्हें अलग–अलग प्रयुक्त करना चाहिए । उन्हें भिन्न– भिन्न टुकड़ो से लगाना चाहिए । इससे ललित की छाया कम होगी । पंचम के इतर प्रकार दिखेगा । पंचम राग ललितांग का एक प्रातःकालीन राग माना गया है । इस वजह से यह आवश्यक है कि उसे ललित से अलग करना पड़ेगा । दूसरा यह है कि, दोंनो मध्यम अलग–अलग लगाने से ललित की छाया नहीं दिखेगी । राग पंचम में बहुमत ऐसा है कि पंचम अवरोह में ही लगाया जाता है । इस समय के बहुत–से समप्रकृतिक रागों में यह अवरोह में लगाया जाता है । जैसे की : 'सा, रे रे सा, सां, सां, रें नि ध प, प, प म ग, म ध सां, रें नि ध म ग रे सा । म ध सां, सां, सां रें नि ध, म ध, नि ध, म ग, म ध सा रें रें नि ध म ग रे सा' ।

इस टुकडे में पहले श्री राग का आभास होता है, परंतु बाद में उस राग के नियम शिथिल हो जाते हैं । इसमें धैवत तीव्र है, अतः श्री राग नहीं बन सकेगा । कई गवैये ने यह राग 'पंचम' कहकर सुनाया तो दूसरे गायक ने 'वसंतपंचम' कहते पाए गये हैं । पंचम न लगनेवाले वसंत में तीव्र धैवत है तथा दोंनो मध्यम होते हुए, अवरोह में पंचम नहीं दिखेगा । पंचम लगनेवाले वसंत में धैवत कोमल पाया गया है । 'चतुर' पंडित ने जो प्रकार बताया है, वह इनसे अगल है, क्योंकि वह संपूर्ण होकर दोंनो मध्यम वाला है तथा उसका वादी स्वर मध्यम दर्शाया है ।

रे कोमल, मध्यम दोऊ पंचम दीनो त्याग ।

मस वादी–संवादी तें, षाडव पंचम राग ॥

थाट	:–	मारवा
विकृत स्वर	:–	रे तथा म (दोनों)
वर्जित स्वर	:–	प
जाति	:–	षाडव
वादी–संवादी	:–	म, सा
गायन समय	:–	उत्तर रात्रि
आरोह	:–	सा म म ग मधनिध सां
अवरोह	:–	सां निध ममग मगरेसा
पकड़	:–	मध, सां, निध, मध, मग, रेसा साम, ग, मध, निमध

राग पंचम–झपताल

स्थाई : गुनि को करिये संग, सीखिये सुनिय ढंग विद्या कठिन वेद, निस दिन सुमिरिये ।

अंतरा : नाद उखदधि अगाध, अगणित, तामें निनाद, 'रामरंग' गुरू चरण बैठ नित साधिये ।

पंचम एक अति मधुर राग है । रचनाकार (रामरंग) अनुसार, यदि शब्दों की ओर ध्यान दे तो यह शांत रस दिखाई देता है । जिसमें गुनीजन का गुणगान करते हुए, गुरू का गान करते समय गुरू के गुन की प्रसंशा की है । जो बेहद शांत एवं स्थिर भाव उत्पन्न कर रहा है । गुणगान करते हुए यह कह रहे है कि, गुरू के शरण के आसित है । गुरू के संग रहेने से गुरू द्वारा बताई गई सलाह से हर कठिन कार्य आसान हो जाता है और उस कार्य में सफलता अवश्य प्राप्त होती है । उनके उपकार अनंत है, अगणित है और गुरू की महिमा अपरंपार है । गुरू ही शिष्य को सही मार्ग दिखा सकते है और ऐसे ही गुरू का साथ कभी नहीं छोड़ना चाहिए । उनकी हर एक आज्ञा का पालन करते हुए अज्ञानता से ज्ञान की तरफ मूड़ना चाहिए । ऐसे ही गुरू एक शिष्य का जीवन पार करा सकते है, जो अपने ज्ञान का प्रकाश चारों और फैलाते है । ऐसे गुरू के चरण में रहकर जीवन की सारी बाधाँएं दूर हो सकती है । गुरू के चरण का आसरा कभी न छोड़े और उनके पास जो ज्ञान है उन्हें ग्रहण करने से सारा जीवन कठीनाईओं से मुक्त हो सकता है । ऐसे ही शब्द गुरू के तरफ समर्पण और आदर समान प्रेम की चरमसीमा बतातें हुए कहते है कि, गुरू के प्रति संवेदना रखनी चाहिए, जो स्थिरता और समर्पण की तीव्रता बताती है । दोंनो मध्यम का प्रयोग अति आनंदित दिखाई देता है । ऐसी ही स्थिरता राग के स्वरों में भी पाई गई है, जो इस राग का रस और भाव स्वाभाविक रूप से उत्पन्न कर रहा है ।

स्थाई [1]

म	ध	नि	सां	सां	सां	ध	म	–	ग
गु	नि	को	ऽ	क	रि	ये	सं	ऽ	ग
ध	म	ग	रे॒	सा	सा	(सा)	ऩिध़	सा	सा
सी	ऽ	खि	ये	ऽ	सु	नि	येऽ	ढं	ग

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि (भाग–५) / पृ. 266

सा	ध़	सा	–	सा	म	म	(म)	ग	ग
वि	ऽ	द्या	ऽ	क	ठि	न	वे	ऽ	द
म	ध	नि	सां	ध	म	ग	रे॒	सा	–

नि	स	दि	न	सु	मि	रि	ये	ऽ	ऽ
X		२			०		३		

अंतरा

म	ध	सां	–	सां	गं	रें	सां	सां	सां
ना	ऽ	द	ऽ	उ	द	धि	अ	गा	ध
सां	ध	सां	सां	सां	गं	मं	गं	रें	सां
अ	ग	नि	त	ता	में	नि	ना	ऽ	द
सा	म	म	–	ग	म	ग	म	ध	ध
रा	म	रं	ऽ	ग	गु	रू	च	र	न
सां	ध	म	ध	नि	म	ग	रे	सा	–
बै	ऽ	ठ	नि	त	सा	ऽ	धि	ये	ऽ
X		२			०		३		

4.4.2.2 राग : पंचम मारवा

यह एक अप्रचलित रूप है । राग नाम से दिखाई देता है कि मारवा में पंचम चमत्कार रूप में अपना अस्तित्व बयांन करता है । जैसे पंचम सोहनी, पंचम मालकौंस, पंचम बागेश्री इत्यादि राग है । जिन रागों में पंचम वर्जित याने विवादि रहता है, उन रागों में चमत्कृति के नाते योग्य स्थान पर ही पंचम लिया जाता है । यहाँ पर विवादी स्वर का अर्थ विरोधाभास के रूप में होता है जिसमें विवादि स्वर राग की शोभा बढ़ाता है । जिसका उपयोग योग्य स्थान पर ही दिखाया जाता है । उसे राग में पूर्ण प्रवेश नहीं मिलता । अगर उसे आरोहावरोह के नियम में दिखाया जाय तो रागरूप नष्ट होकर दूसरे राग की अनुभूति हो सकती है । इन सूक्ष्म बातों का विचार करके हामारे बुजुर्गों ने राग की रचना की है । शोधकर्ता को अध्ययन दरम्यान यह प्रतीत हुआ कि, मारवा रूप सम्पूर्ण रखा जाता है और अवरोहांग में योग्य स्थान में पंचम दिखाया जाता है । थोड़ा मारवा दिखना योग्य प्रतीत होगा । मारवा – सा, नी नी रे॒, रे नी ध, नी म ध सा, सानी ध नीरे॒, ग म ध, ध, म ग रे॒, रे,

नी ध सा । पंचम का स्थान :– सा, सान्‌ि ध नी रे, ग म ध, धप, प रे, गम ध, ध, मग रे, रे नी ध सा । रे गमधनी ध, म ध, म नी ध धप, ध, मग रे, गम ध, मध नी रे़, रे़, नीध, धप, परे़, रे़, गम ध, मग रे, रे़, सा । यहाँ पर एक ध्यान रखना योग्य है कि व्यवहार में कभी–कभी मारवा के समय षड्‌ज उपयोग नहीं करना चाहिये । षड्‌ज ना उपयोग करने से कोमल रिषभ इतना बढ़ जाता है कि तीव्र होने का भास होता है । मारवा का रिषभ न तो कोमल न ही तीव्र वाली अवस्था में पाया जाता है । ऐसी स्थिति में रिषभ से षड्‌ज लेने पर षड्‌ज रिषभ की तरफ खिंचा जाता है, यानी कि स्वाभाविक षड्‌ज अपना स्थान छोड़कर बेसुरा हो जाएगा है । ऐसे समय पर धैवत के सहारे ही षड्‌ज अपने स्थान पर दिखाई पड़ेगा । पूरिया से ज्यादा षड्‌ज का महत्व मारवा में पाया जाता है । पंचम से मारवा में 'परे' की संगति की गई है । वह श्री अंग की निशानी है, ऐसा कहा जा सकता है । परन्तु यहाँ पर चमत्कृति के नाते कभी–कभी ऐसा किया जाता है । वही 'परे' संगति श्री के बाकी स्वरों के साथ महत्वपूर्ण है । हमारा संगीत बारह स्वरों पर आधारित है । इस कारण वहीं बातें पुनरावर्तित होना स्वाभाविक है । ऐसे समय राग स्वभाव देखना अति आवश्यक है, न कि केवल स्वर संगति । इस राग के नियम मारवा के ही पाए गये हैं ।

पंचम मारवा का स्वरूप – सा, नी नी रे़, रे़ नी ध, नी म ध सा । सा नी रे, रे़ नी ध, ध प, म ध नी रे , रे नी ध सा : सा नी ध नी रे़, गम ध, मध, धप, ध, मग रे़ रे़ नी नी ध सा । रे़, गम ध, म ध नी नी ध, धप, प रे़ गम ध, ध मग रे़ ग रे़ , रे़ , सा । सा, ध, ध, म ध म नी ध, धप, पम गम ध, मग रे़ , रे़ नी नी ध सा । सा नी ध नी रे़ , ग म ध, नी ध, म ध नी रे़ , रे , नी नी ध, नी म सा, सा, सानी धनी रे़ , रे़ नीध मग रे़ , रे़ , ग म ध, धप, प ध, मग रे़ , रे़ सा ।[1]

यह अति शुद्ध आर्षभी जाति राग है ।

1. ठाकुरदास, माणिकबुवा / राग–दर्शन / पृ. 140

राग : पंचम मारवा

रागदर्शन	रे , ग म ध, धप, ध, मग रे , रे नी नी ध सा ।
राग लक्षण	सुररचाये पंचम मारवा । कोमल 'रि' तीखे सब रहिलवा ।

त्रिताल नी रे ग म ध नी रे नी ध प ऽ ध म ग रे सा ॥

षाडव रूप सखी सांझ भइलवा । अति मनहर धुन गाये लुगवा ॥१॥

राग पंचम मारवा अप्रचलित रागों में से एक राग माना गया है, जो अत्यंत सुमधुर साबित हुआ है । इस राग में प्रस्तुत की गई चीज़ में पंचम मारवा का विश्लेषण किया गया है । एक तरह से यह भी कह सकते है कि, यह एक चर्तुरंग है जिसमें राग का विश्लेषण किया गया है । राग के लक्षण के बारे में उनकी स्वर संगति के बारे में चर्चा की है तथा राग के गाने का समय जो सांज का समय है उसकी जानकारी दी है । इस राग का षड्ज रूप है, जिससे एक मनहर और मधुर धुन प्रदर्शित हो रही है । स्वरसंगति के साथ ही राग–दर्शन में लगते स्वर 'रे ,ग म ध, धप, ध, मग रे , रे नी नी ध सा' बताए है एवं कोमल रे का महत्व भी बताया है साथ ही चीज़ भी प्रस्तुत कि है। जिनके शब्द कुंवर कान्हा (श्रीकृष्ण) की लीलाओं का वर्णन कीया गया है । जैसे की कान्हा ने गोपी की बैंया पकड़ ली है और गोपीओं के साथ भगवान लीलाएँ करते पाए गये है । जिसमें भगवान गोपी का हाथ नहीं छोड़ रहे है और वहाँ उपस्थित लोग गोपी का मझाक बना रहे है । गोपी कान्हा को बिनती कर रही है परंतु कान्हा है कि किसीकी भी बात नहीं मानते हुए बैंया पकड़े हुए है और गोपी का हाथ नहीं छोड़ रहे हैं । ऐसी ही श्रीकृष्ण की अपरंपार लीलाओं का रचनाकार ने प्रस्तुत चीज़ में भाव प्रस्तुत किया है जिसमें मारवा थाट या मारवा राग की छाँट दिखाई पड़ना स्वाभाविक प्रतीत हुआ है ।

स्थाई [1]

–				+				–				०			
ऽ	सु	र	र	चा	ऽ	ये	ऽ	ऽ	पं	च	म	मा	ऽ	र	वाऽ
ऽ	म	ग	म	ध	ऽ	प	ऽ	ऽ	प	प	प	ध	म	ग	रे॒सा
को	ऽ	म	ल	रि	ऽ	सु	र	ती	खे	स	ब	र	हि	ल	वा
सा	नी	ध	नी	रे॒	ऽ	सा	सा	म	ध	म	ध	म	ग	रे॒	सा
नी	रे॒	ग	म	ध	नी	रे॒	नी	ध	प	ऽ	ध	म	ग	रे	सा॥

1. ठाकुरदास, माणिकबुवा / राग–दर्शन / पृ. 142

अंतरा

षा	ऽ	ड	व	रू	प	स	खी	सां	ऽ	झ	भ	इ	ल	वा	ऽ
म	ध	नी	ध	सा	सा	सा	सा	ध	नी	रे्	रे्	रे्	नी	ध	ऽ
अ	ति	म	न	ह	र	धु	न	गा	ऽ	ये	ऽ	लु	ग	वा	ऽ
नी	रे्	नी	ध	नी	ध	प	प	म	ध	म	ग	नी	रे्	सा	ऽ

चीज	बैयां मरोर दीनी कान्ह कुंवरवा । फजित भये हम देखत लुगवा ।
त्रिताल	लाख कहो समझाये ना समझत । कौन कहे अब ढीठ लंगरवा ॥

स्थाई (1)

o				–				+				–			
ऽ	बै	यां	म	रो	र	दी	नी	का	ऽ	न्ह	कुं	व	र	वा	ऽ
ऽ	प	प	प	रे्	रे्	ग	म	ध	ऽ	ध	ध	म	ग	रे्	सा
ऽ	फजि	त	भ	ये	ऽ	ह	म	दे	ऽ	ख	त	लु	ग	वा	ऽ
ऽ	सासा	सा	सा	नी	रे्	नी	ध	म	ध	म	ध	म	ग	रे्	सा

अंतरा

ऽ	ला	ख	क	हो	ऽ	स	म	झा	ऽ	ये	ना	स	म	झ	त
ऽ	म	ग	ग	म	ऽ	ध	ध	सा	ऽ	सा	सा	नी	रे्	रे्	रे्
ऽ	कौ	न	क	हे	ऽ	अ	ब	ढी	ऽ	ठ	ल	ग	र	वा	ऽ
ऽ	नी	रे्	नी	रे्	ऽ	नी	ध	ध	ऽ	प	प	प	ध	रे्	सा

1. ठाकुरदास, माणिकबुवा / राग–दर्शन / पृ. 143

4.4.2.3 राग : भंखार

राग भंखार की गणना दुर्मिल रागों में की जाती है । इसका नाम बहुत लोगो ने सुना होगा परंतु इसे गाने वाले बहुत ही कम मिलेंगे । प्रातःकाल के समय 'सूर्यकांत' ठाठ की प्रबलता रहती है, यह बात गायकों को विदित है, और यह राग भी उस समय का है । इसलिए वे ललित और वसंत को बचाकर कुछ और मनोरंजक मिश्रण तैयार करके गाते हुए पाये जाते है । भंखार और भटियार, इन रागों का प्राचीन ग्रंथों में वर्णन न होने से उनको नियमबद्ध करना आसान नहीं है । इनके स्थूल नियम प्रसिद्ध गायकों के गीतो के आधार से निर्धारित करना पड़ेगा । भंखार और भटीयार ये राग संधिप्रकाशोचित है, यह प्रायः सभी स्वीकार करते है । सा, रे, ग, म, प इन स्वरों पर कोई भी आपत्ति न होगी । कई गायक इसमें दोनों मध्यम लगाते है तो कोई एक मध्यम ही लगाएँगे । एक मध्यम लगाने वालो में तीव्र मध्यम ही माना जाना चाहिए, क्योंकी प्रातःकाल समय में तीव्र मध्यम ही लगेगा और यह राग गाया जाएगा । इस समय कोमल मध्यम बिलकुल न लगने वाले राग केवल विभास दिखेगा । इमें तीव्र 'म' धैवत की आश्रय से और पंचम, गांधार की संगति के नीचे इतना दुस्सह नहीं हो सकता, एक तीव्र मध्यम लेने से ही संध्याकालीन वातावरण उत्पन्न होगा । इन दोनों रागों में दोनों मध्यम लगाने का रिवाज दिखाई देता है । भंखार और भटियार में यह दोनों राग संपूर्ण माने जाते है । यह राग में पंचम राग का मिलाव होने की संभावना अवश्य रहेगी । पंचम राग में ललितांग स्पष्ट है । वह ललितांग भंखार राग में न दिखे उसका ध्यान रखना आवश्यक है । यह एक महत्वपूर्ण सिद्धांत ध्यान में रखना पड़ेगा । अर्थात् 'नि़ सा, म, म, म ग' ऐसा खुले मध्यम वाला टुकड़ा भंखार में नहीं आएगा । भंखार का वादी स्वर पंचम रखा गया है और बीच बीच में 'प ग' की संगति होती है । तीव्र धैवत से तीव्र मध्यम की संगति बहुत ही सुन्दर लगेगी ।

राग भंखार का रूप कुछ इस तरह हम बता सकते है : 'ग, प ग, रे सा, नि़ सा, ग म प, प म प ग, म ध म ग, म ग रे सा, नि़ नि़, सा रे ग, म ग, म ध म ग, म ग रे सा, प, म प ग, प ग रे सा, नि़, रे ग, म ग, ग म ग, ग म ध म ग, म ग रे सा, नि़ सा, ग म प, प, प म प ग, म ध म ग, प ग रे सा ।'

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 332

यह राग सुनने में थोड़ा–थोड़ा सवेरे की पूर्वी जैसे सुनाई देगा, परंतु पूर्वी में कोमल मध्यम लगाकर 'नि सा ग म प' यह होगा । इस राग में 'प, म ग, म ग रे सा, ऩि, सा रे ग म ग, म ध, म ग, प ग रे सा, प, म प ग, म ग, रे सा' यह टुकड़ा बिलकुल स्वतंत्र है ।

उत्तरांग की ओर बढ़ते हुए यह राग का विशेषरूप ध्यान में रखना योग्य रहेगा – 'प, म प ग, प ग रे सा', 'म, प ग, म ध, म ग', 'म ग रे सा' । यहाँ 'ध प' को बहुत चतुराई से हटाया गया है । सा सा, ग म प, प, ग, ग म प ग, प ग रे सा, सां रे सा ऩि, सा, रे ग, म ग, म प, म प ग, प ग रे सा । 'प ग रे सा' इस टुकड़े से किंचित् संध्याकालिन रागों की छाया उत्पन्न होगी, परंतु आरोह और अवरोह में 'म प, प, म ग', 'म ध म, प ग' ये टुकडे लगाकर कोमल मध्यम दिखाते ही संध्याकाल के सारे राग दूर हो जाएँगे । पूर्वी में 'ग म म ग म ग' इस तरह से मध्यम का संयोग होता है, वह भी अलग हो जाएँगा । इस राग का उत्तरांग तार–सप्तक में कहीं नहीं जाता । जैसे की– 'म ध सां, सां, रें सां, सां, म म, प ग, म ध सां, रें नि ध, म ग, प ग रे सा; सा सा, ग म प ।

भंखार में पंचम स्वर केवल अवरोह में ही लगाते है । इसमें थोड़ा सा चलन देखते है : 'म प ग, म ध, म ग, प ग रे सा, सां, नि ध, म ध, म ग, ऩि सा ग म प, म, प ग, प ग रे सा । सा, रे रे सा, ग, म ग, म ध म ग, म ध सां, रें सां, गं रें सां, मं गं रें सां, सां नि ध, म ग, प ग रे सा, ऩि सा ग म प ।

भंखार को प्रात:कालीन राग मानने से इसमें दोंनो मध्यमों की उपस्थिति है । वह समय सूर्यकान्त ठाठ का होने से तीव्र धैवत भी बिलकुल उचित है । भंखार और भटियार रागों में ललितांग का भेद रखा जाए तो यह ये राग गाने में कठिनाई नहीं होगी । भंखार में केवल 'प ग' की संगति होने से ही संध्याकालीन राग नहीं हो सकता । इस प्रकृति के राग ही संध्याकाल के नहीं होते । पूरिया और मारवा की बाबत में कुछ शंका नहीं, क्योंकि इनमें पंचम बिलकुल नहीं लगता । वराटी में कोमल मध्यम नहीं है और साजगीरी में दोंनो धैवत है । इस राग को समकालीन रागों से बचाना चाहिए, फिर यह कृत्य अधिक कठिन नहीं होगा ।

इस राग की पकड़ 'प, म, प ग, प ग रे सा, ऩि, सा रे ग, म ग, म प म ग' अगर यह समझे तो कोई कोई कहते है की इस राग में ललित का उत्तरांग 'ध, म ध, म ग' यह चमकता हुआ रखा

जाए । यह मतभेद को ध्यान में रखना आवश्यक होगा । राग भटियार और राग भंखार बहुत ही नज़दिक के राग माने गए है । भंखार राग का प्राचीन ग्रंथों में आधार मिलना संभव नहीं हुआ, परंतु 'चतुर पंडित'ने इसके बारे में चर्चा की है :

मारवा मेलके प्रोक्तो रागो भंखारनामकः ।
आधुनिकं वदंतीमं केचिल्लक्ष्यविचक्षणाः ॥
संपूर्णः पंचमांशः स्यादुत्तरांगप्रधानकः ।
यामे तृतीयके रात्र्यां गानमस्य सुखप्रदम् ॥
ईषत्स्पर्शो भवेदिष्टः शुद्धमस्याभिव्यक्तये ।
रागस्यास्य समुद्धारे प्रवदंति मनीषिणः ॥
मुक्तमस्य तिरोभावे कथं पुनः समुद्भवेत् ।
तत्स्वरांशयुतो रागो भट्टिहारः सुलक्षणः ॥[1]

'कल्पद्रुम' में ऐसा कहा है कि :

भैरवो मालकोशश्य ललितो मिश्रिता यदा ।
भखारो जायते तत्र प्रातःकाले प्रगीयते ॥
भैरव मालवकोश मिलि और ललित ही ठान ।
भंखारा ही होत है प्रहर दिन चढ़े गान ॥[2]

प ध सा रे नि रे । प ग रे सा रे सा । रे म ग म प ध । म ग रे ग रे सा ।

भंखार में कोमल 'म' की अपेक्षा तीव्र 'म' अधिक पाया जाता है । प्रातःकाल के ये पाँच राग निकटवर्ती होने पर भी अपने नियमों द्वारा एक-दूसरे से कितने भिन्न है :-

(१) म ध नि सां रें, सां, नि ध नि सां, नि ध, ग - (सोहनी)

(२) नि़ रे ग म, म म ग, म ध, म म ग - (ललित)

(३) म ध सां, सां, रें नि ध, म ध म ग, सा म, म ग - (पंचम)

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 334
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 335

(४) ऩि सा ग म प, म प ग, म ग, रे॒ सा, म ध म ग, प ग रे॒ सा -- (भंखार)

(५) सा ध, ध प म, प ग, म ध सां, सां, रें॒ नि ध, प म, ध प म, प ग, रे॒ सा -- (भटियार)

ये राग गाने और पहचानने में कठिनाई न होगी । इन अंगों की सहायता से इन रागों का स्थूल रूप भी ध्यान में हंमेशा रह सकेगा ।

ठाठ मारवा में जबहि, दोनों मध्यम धार ।

रे कोमल, संवाद पस, कहत राग भंखार ॥

थाट	:-	मारवा
विकृत स्वर	:-	रे॒ तथा म (दोनों)
वर्जित	:-	०
जाति	:-	संपूर्ण
वादी-संवादी	:-	प, सा
गायन समय	:-	रात्रि का अंतिम प्रहर
आरोह	:-	सा रे॒ सा गमपम पग मधसां
अवरोह	:-	सां निधप मधमग पगरे॒सा
पकड़	:-	ऩिसा, गमप, म, पग, मधमग, पग, रे॒सा

राग : भंखार (धीमा त्रिताल)

स्थाई : कायम रहे तेओ राज राजन के राजा छत्र पति महाबली ।

अंतरा : जौलों रहे घरनि चन्द्र दिवाकर तौंलो प्रताप तेरो छाजे जग महाबली ।

राग भंखार को भटियार के समान माना गया है । कहा जाता है कि सर्वप्रथम हिन्दुस्तान में संगीत केवल ईश्वर प्राप्ति के मार्ग का अमूल्य पथ हुआ करता था । इसी कारण प्राचीन बंदिशों या रचनाओं में ईश्वर के प्रति प्रेम, भक्ति, लीला, गुणगान के शब्द मिला करते है । किन्तु सांस्कृतिक पहलु की ओर से संगीत को देखे तो परिणाम स्वरूप संगीत का उपयोग ईश्वर को रिझाने के साथ राजाओं और बादशाहों को रिझाने में भी होने लगा । प्रस्तुत बंदिश इसी परिस्थिति का जीवंत उदाहरण है जहाँ रचनाकार राजा छत्रपति के राजपाठ को आशीर्वाद देते हुए उनके अचल राजपाठ

एवं अचल राजधानी के लिए प्रार्थना कर रहे हैं । जो साफ ह्रदय से की हुइ माने तो 'वात्सल्य रस' की उत्पत्ति करता है । यह रस को लेकर आज भी चर्चा का विषय आचार्यों के बीच रहा है किन्तु प्रेम समान आदर को 'वात्सल्य रस' से बहेतर किसी रस में न्याय न दे पाएँगे । स्वारांकन के मुताबिक 'म ध म ग, प ग, रे सा' की स्वरसंगति अति कर्णप्रिय साबित हुई है । रचनाकार द्वारा अपने राजा के प्रति भक्ति की तिव्रता दिखाई देती है और राजा की लंबी उम्र के लिए भगवान से प्रार्थना करते हुए दिखाई दे रहे है ।

स्थाई [1]

ग	–	म	प	प	–	ध	म	ग	–	सा	ग	म	प	ग	रेसा
का	ऽ	यम	र	हे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ते	रो	रा	ऽ	ज	ऽऽ
सा	–	रे	सा	ग	म	प	ध	नि	धप	ध	म	ग	सा	ग	पग
रा	ऽ	ज	न	के	रा	जा	ऽ	छ	ऽ	त्र	प	ती	म	हा	ऽब
३				x				२				o			
रेसा	–,ग	–म	प												
लीऽ	ऽ,का	ऽयम	र												
३															

अंतरा

प	–	सां	सां	सां	–	धनि	रें	सांसां	–नि	–रें	गरें	सां	–	धनि	रेंनि
जौ	ऽ	लो	र	हे	ऽ	ऽऽ	ध	रनि	ऽचं	ऽद्र	ऽदि	वा	ऽ	ऽऽ	ऽऽ
धप	–सा	–ग	–म	प	प	ध	प	ध	नि	प	ध	म	गसा	पग	पग
कर	ऽतौं	ऽलों	ऽप्र	ता	प	ते	रो	छा	ऽ	जे	ज	ग	ऽम	हा	ऽऽ
३				x				२				o			
रेसा	–,ग	–म	प												
बली	ऽ,का	ऽयम	र												
३															

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि (भाग–५) / पृ. 364

4.4.2.4 राग : मार्ग हिंडोल

राग मार्ग हिंडोल मारवा थाट का अत्यंत ही अप्रचलित राग माना गया है । जिसका विवरण बहुत कम दिखने को मिला है । क्योंकि यह अप्रचलित राग है इसीलिए ज्यादा गायकों या वादकों द्वारा प्रस्तुत किया हुआ नहीं मिलता । यह राग में निषाद स्वर बहुत कमी के साथ प्रयुक्त होता है । 'रें॒निध मग गपगसा' यह स्वरमालिका इस राग को प्रत्यक्ष करने में सहाय बनेगी । कुछ गुणीजनों के मतानुसार, शांत तथा भक्ति रस की कविता में यह राग गाने से परिणाम अच्छा साबित हुआ है । क्योंकि यह एक अति प्रचलित राग होने की वजह से इस राग के बारे में शोधकर्ता द्वारा इतनी ही जानकारी प्राप्त हुई है, जो कि यह राग की मर्यादा कह सकते है ।

मध्यम तीवर सुर लग्यो, रे कोमल रस घोल ।

धग संवाद सँजोय कर, बनत मार्गहिंडोल ॥

थाट :- मारवा

विकृत स्वर :- रे॒, म

वर्जित :- आरोह में रे

जाति :- औड्डव-संपूर्ण

वादी-संवादी :- ध, ग

गायन समय :- प्रभात (रात्रि का चौथा प्रहर)

आरोह :- सागम धनिसा सां

अवरोह :- सारें॒निध मग पगसा

पकड़ :- ऩिसा गम धनिधसां रें॒निधमग पगसा

राग : मार्ग हिंडोल (त्रिताल)

स्थाई : मोरे मंदिर आवो शाम मुरारी ॥

अंतरा : धरी पल - पल कछु न सुहाव, अब दरशन दो गिरधारी ॥

मारवा थाट में ज्यादातर रचनाओं में श्रृंगार एवं करूण रस पाए जाते है । बहुत ही कम रचना ऐसी होगी जिसमें शांत, हास्य एवं वीर रस उत्पन्न करती हों । जिनमें से प्रस्तुत यह एक

रचना है । शब्दानुसार रचनाकार प्रभु को प्रार्थना करे है कि, प्रभु के शरण के आसित है । हर एक विचार में प्रभु का दर्शन है जो बेहद शांत एवं स्थिर भाव उत्पन्न कर रहा है । भक्त अपने प्रभु श्याम मुरारी से भक्ति समान प्रेम की चरमसीमा वैराग को बताते हुए कहेते है कि, प्रभु के दर्शन मात्र वैराग की संवेदना जगाती है, जो रचनाकार की भक्ति की तिव्रता बताते हुए स्वरांकन की है जो की शांत रस की अनुभूति करवाता है ।

स्थाई [1]

ग	म	ध	म	सां	–	सां	सां	रे॒	नि	ध	म	ग	पग	सा	–
मो	ऽ	रे	ऽ	मं	ऽ	दि	र	आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वोऽ	ऽ	ऽ
ग	सा	ग	–	म	–	ध	म	प	ग	म	ग	–	–	सा	–
शा	ऽ	म	ऽ	मु	ऽ	रा	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री	ऽ
०				३				x				२			

अंतरा

म	ग	म	ग	ध	म	ध	म	नि	ध	सां	सां	सां	–	सां	सां
ध	री	ध	री	प	ल	प	ल	क	छु	न	सु	हा	ऽ	व	त
गं	रें॒	नि	सां	सां	सां	सां	–	ग	म	ध	म	ग	प	ग	सा
अ	ब	द	र	श	न	दो	ऽ	गि	रि	ऽ	धा	ऽ	ऽ	ऽ	रीऽ
०				३				x				२			

4.4.2.5 राग : मालिन

मारवा ठाठ से उत्पन्न राग मालिन को मालिनी या अरूणशंकरा नामों से भी लोग पहचानते हैं । इस राग में मध्यम स्वर पूर्णतया वर्जित है । धैवत स्वर का प्रयोग भी शंकरा की भाँति ही है । 'प नि ध सां नि – –' टुकड़ा, जिसमें निषाद स्वर पर न्यास हो, इस राग में आवश्यक है । कभी–कभी धैवत स्वर आरोहावरोह में बिलकुल छोड़ दिया जाता है । उत्तरांग में जैसे ही शंकरा का भास

1. पटेल, चिंतन / उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीतना अप्रचलित रागोंनुं अध्ययन (महा शोधनिबंध) / पृ. 263

होता है, तुरंत कोमल ऋषभ उसे नष्ट कर देता है । 'ग प ग रे सा –' स्वर–विन्यास से जैताश्री का भास होता है, तो शुद्ध धैवत उसे नष्ट कर देता है । इस प्रकार मालिन का स्वरूप अन्य राग से स्वतंत्र हो जाता है । मुख्य स्वर गांधार तथा निषाद माना जाता है । शास्त्रीय द्रष्टि से इस राग को सायंकालीन संधिप्रकाश राग स्थान प्राप्त होता है । इस राग में निषाद पर विश्रांति होती है । इस राग को गाते समय जब शंकरा का भास होता है, तो कोमल ऋषभ उस भ्रांति को दूर कर देता है । 'सा प' की संगति इसमें बहुत प्रिय लगती है । 'गप गरेसा' इस स्वर–संगति से जब जैतश्री का आभास होता है, तो शुद्ध धैवत उस भ्रांति को दूर करने में सहायक बन जाता है, क्योंकि जैतश्री में धैवत कोमल है और इसमें शुद्ध पाया गया है । यह राग बहुत ही कम सुनने को मिलता है । इसका स्वरूप बहुत ही कर्णप्रिय है । राग का स्वर विस्तार कुछ इस प्रकार किया जा सकता है :

सा – ऩि –, प़ ऩि सा –, ग – रे – सा – ऩि – – सा ऩि – –, सा ग – – प – –, ग प – – ग – रे सा –, सा ग – प – – , ग प ध प – ग –, ध प ग – – रे – सा – –, ग प नि – – प, ग प नि ध सां नि – – प – –, सां नि – – प ग – प ध प – ग – ध प ग – रे सा – –, सा प ग प, ध प ग – – रे सा – – ।

गनि संवाद, मध्यम बरजी षाडव राग मालिन ।

सायंकाल संधि प्रकाश थाट मारवा आधिन ॥

थाट	:–	मारवा
विकृत स्वर	:–	रे
वर्जित	:–	आरोह में रे म, अवरोह में म
जाति	:–	औड्डव–षाडव
वादी–संवादी	:–	ग, नि
गायन समय	:–	सायंकाल
आरोह	:–	ऩिसागप पधनिसां
अवरोह	:–	सांनिधप गपग रेसा
पकड़	:–	पनिधसां, निधप, गपग, रेसा

राग : मार्ग हिंडोल – गीत (तीनताल)

कोई जतन बताओ, कैसे मिलना होय,

मैं तो तन–मन–धन सब वार डारूँ ।

को का जाने जियरा की बीथ,

'मनहर' पिया सन लागी प्रीत ॥

रचनाकार 'मनहर' द्वारा अगर यह राग को शब्दों की ओर देखे तो पहेला आनेवाला विचार वह होगा कि, नायिका की बैचेनी पिया को मिलने की एवं पिया के प्रति समर्पण का भाव प्रकट होता है । शब्दार्थ समझने की कोशिष करे तो प्रियतमा अपने प्रियतम से काफि अरसे से बिछड़ चुकिं है जिसका गम, विरह नायिका की इच्छा से स्पष्ट दिखाई पड़ती है । जब वह कहेती है कि, प्रियतम के मिलने पर वह अपना तन, मन, धन अपने नायक पर न्योंच्छावर कर देगी । जो शृंगारिक रस के साथ ही करूण रस का एहसास भी करवाता है । श्रृंगारिक रस इस तरह की नायिका को प्रियतम से मिलन की आस है जिसे वह काल्पनिक खुशी को महसुस कर रही है । जिसमें वह अपने आप को व्यक्त करने के विभिन्न तरिके ढूँढ रही है और यही स्थिति करूण रस को उत्पन्न कर रहा है । नायिका अपने विरह के व्याकूलता परिणाम स्वरूप संपूर्ण तरह से समर्पित होने को तैयार है । अचल मन से तन, मन जो सर्वमान्य सत्य नायिका मानती है वह बताती है और प्रियतम के सामने निर्मूल्य ऐसा धन समर्पण करती है । श्रृंगार रस के साथ ही वास्तव में करूण रस भी छुपा हुआ महसुस किया जा सकता है जो प्रबलतापूर्वक स्पष्ट होता है । जब नायिका नायक के बिना वह अपने विरह की करूणता बताती है । अपनी व्यक्तिगत शिकायतों के बाद अपनी उलझन को सामने रखते हुए पूछती है कि, अब वों क्या करे की अपने विरह को दूर करने के लिए जो स्पष्टतापूर्वक केवल करूण रस उत्पन्न कर रहा है और इसी रस को पूर्णतः साबित किया है । जो बताता है कि, अब नायिका के पास कोई उपचार नहीं है, केवल उलझन और प्रश्न है जो करूण रसोत्पत्ति का कारण पैदा कर रही है ।

स्थाई (1)

X				२				०				३			
					सा	ग	ध	ध	प	ग	रे	सा	सा	सा	सा
					को	ई	ऽ	ज	त	न	ब	ता	ओ	कै	से
नि़	नि़	सा	पग	प	प	ग	प	नि	ध	सां	नि	धप	प	ग	प
मि	ल	ना	हो	ऽ	य	मैं	तो	त	न	म	न	ध	न	स	ब
गप	धप	ग	रे	सा	सा,										
वाऽ	ऽऽ	र	डा	ऽ	रूँ ।										

अंतरा

X				२				०				३			
प	–	सां	–	सां	–	सां	–	सां	सां	नि	धप	प	निध	सां	नि
को	ऽ	का	ऽ	जा	ऽ	ने	ऽ	जि	य	रा	ऽऽ	की	बीऽ	ऽ	थ
नि	सां	गं	गं	रें	सां	नि	धप	गप	धप	ग	रे	सा	सा		
म	न	ह	र	पि	या	स	न	लाऽ	ऽऽ	गी	प्री	ऽ	त ॥		

4.4.2.6 राग : मालीगौरा

मालीगौरा नाम सुनने में चमत्कारीक लगता है । ऐसा माना गया है कि, यह राग प्रचार में मुसलमान गायक द्वारा लाया गया है । तो कई संगीतज्ञ मानते हैं कि, मालवगौड़ शब्द से निकला है और कई संगीतज्ञ मानते है कि मालीगौरा राग मालव और गौरी इन दो रागों को मिलाकर उत्पन्न किया गया है ।

यह सायंगेय राग हैं, अत: कोमल मध्यम जाकर वहाँ तिव्र होता हुआ दिखेगा । यह पूवाँग प्रबल राग हैं, इसीलिए कोई धैवत का विधि–निषेद नहीं भी मान सकता है, किन्तु मालीगौरा के

1. हिराणी, चंद्रकांत / अप्रचलित राग / पृ. 99

विषय में एक-दो मतभेद पाये जाते है । कोई 'गौरा' में तिव्र धैवत मानते है, कोई कोमल धैवत मानते है और कोई दोनों लगाने को कहते है, तो कोई 'न तीवर, न कोमल' (अंतर) धैवत लगाने की सलाह देते है ।

चतुर पंडितने यह राग, मारवा थाट का राग मानते है । कोमल मध्मय न होने से 'पूर्वी' या 'मारवा' इनमें से एक होता दिखता है । बहुमत से मालीगौरा राग में तीव्र धैवत का प्रचार होने से पंडितजीने इसका मारवा थाट में रखना उचित समझते है । इस राग के बारे में बहुत से मतभेद होते हुए दिखे है । सायंगेय संधिप्रकाश रागों में धैवत पर मतभेद हुआ । 'अंतर धैवत' की कल्पना तो मतभेद को टालने का एक प्रयत्न समझा जा सकता है ।

कई गायक ने यह राग 'श्री' राग के अंग से गाया हुआ है, जिसमें धैवत भी कोमल था परंतु श्री राग का गांधार - धैवत का नियम उसमें छोड़ दिया जाता है । यह राग की एक खुबी ध्यान में रखनी आवश्यक है जो की यह राग मंद्र और मध्य स्थानों में ही गाया जाना चाहिए जैसे की,

'सा, रे रे, सा, नि़, रे नि़ प़, म़ ग़, म़ रे, सा, नि़ रे ग, रे सा, नि़ रे नि़ ध़ प़, म़ ग़, म़ ध़ सा, नि़ रे ग रे सा । रे नि़ प़, म़ ग़, म़ ध़ सा, नि़ रे सा, ग, नि़ रे सा, रे नि़ प़' ।

संध्याकाल का राग होने के कारण धैवत थोड़ा कम लिया जाता है तथा बीच में 'नि़ प़' की संगति भी अच्छी लगती है । कहीं गायक धैवत को छोड़ भी देते है । जो गायक यह राग यह प्रकार गायेगा, उसमें 'श्री' राग का अंग कदाचित् 'नि प' संगति धैवत - कोमलत्व मंद्र स्थान में वैचित्र्य, धैवत का दुर्बल्य, गांभीर्य वगैरेह सिद्धांत ध्यान में रखना योग्य है । 'सा, नि़, रे नि़ ध़ प़' यह स्वरसंगति बीच-बीच में लेने से यह सुंदरता बढ़ाता है । नीचे से 'म़ ध़ सा, नि़ रे सा' यह टुकडा लेते है, तब बहुत ही मीठा लगता है ।

विषयोचित्त राग का अध्ययन करते समय शोधकर्ता को यह ज्ञात हुआ कि, आरोह में पंचम नहीं लिया जाए तो सरलता होगी । जैसे की, 'म़ ध़ सा, म रे सा, म़ सां' पंचम को हटाने से यह कुछ कुछ वसंत के समान लगेगा । कोई गायक यह भी कहते है कि, मालीगौरा वसंत का सायंगेय जवाब है । पुरिया, मारवा, मालीगौरा, पूर्वी, पूरियाधनाश्री, बराटी, गौरी वगैरेह सायंकाल के रागों

का संबंध यदि युक्तिपूर्वक प्रात:काल के सोहनी, पंचम, वसंत, परज, विभास, कालिंगड़ा वगैरेह रागों से जोड़ दिया जाए तो पद्धति की द्रष्टि से संगीत का बड़ा ही हित होगा । मध्य सप्तक में राग का विस्तार कुछ इस प्रकार हो सकता है । 'सा, रे सा, प, प, म ध प, प, म ध म ग, ग प, रे ग, म ध म ग, रे सा, नि़ सा रे सा । प प, म ध प, म ग, म रे ग, नि़ रे ग, म ध ग, रे ग, म रे ग, रे सा, नि़ रे सा'। (1)

यह चीज़े गाते समय पूरियाधनाश्री का अंग दिखाई देगा । कई कई तो स्पष्ट रूप से यह भी कहते है कि मालीगौरा राग में यह अंग है । अत: उसमें पूरिया का भाग है, इसमें कोई संशय नहि हैं । 'सां नि़ ध़ प़' ऐसा सरल प्रयोग करने से कुछ कुछ कल्याण आगे आना संभव है । पूरिया अंग रखने में बड़ी खुबी है, जैसे की : 'ग, प ग, रे सा, नि़, ध़ नि़, रे नि़, प़, म़ ग़, म़ ध़ सा, नि़ रे सा, नि़ रे ग, रे सा, नि़ रे ग, म रे ग नि़ रे सा, सा, प, प, म ध ग, रे ग, म ध म ग, रे सा' ।

शोधार्थी द्वारा शोध करते समय विषयोचित्त राग के बारे में गहराई से अध्ययन करने पर यह जानकारी प्राप्त की है कि, यह रूप बहुत स्वतंत्र है, चलन पूरिया का है, अवरोह में पंचम है । जैतकल्याण में 'रे' तीव्र है, जैत में 'म, नि' वर्ज्य है । संपूर्ण प्रकार के जैत में मंद्र स्थान कम है, पंचम आरोह में स्पष्ट तथा 'प ग' संगति विचित्र है । पूरिया मारवा रागों में पंचम वर्जित हैं । गौरा का अंतरा तारस्थान में कभी नहीं जाता, ऐसा नियम रखना आवश्यक नहीं । मारवा थाट के प्रकारों में तार-षड्ज तक जा सकते है । गौरा में मंद्रस्थान का उपयोग अच्छा दिखाई देता है, इसे कोई भी स्वीकार करेगा । कोई गायक इस राग में बीच-बीच में 'प ध ग' यह छोटा-सा टुकडा खासतौर पर लेने का प्रयोग करते है । इसका कारण वह यह बताते है कि, इस थाट के रागों में यह महत्वपूर्ण निशान है । गौरा राग में विभिन्न स्थानों पर विश्रांति लेने में तथा आवाज़ छोटी-बड़ी करने की सारी खूबी है । तीव्र धैवत का प्रकार अच्छी तरह स्वतंत्र होने के कारण उससे स्वीकार करना आवश्यक है । जो दोनों धैवत रखना पसंद करते है उन्हें एक आरोह में और दूसरा अवरोह में लगाना सुविधाजनक होगा, किन्तु इस नियम का पालन करना सरल नहि है। कई गायक कुछ ताने तिव्र

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 272

धैवत भी लगाते है, वह कुछ कोमल धैवत की लेते हैं । वह एक निराला प्रकार हो जाएगा, उसका चलन कुछ इस प्रकार हो सकता है ।

सा, रे सा, ध़ सा, नि़ रे ग, रे सा, रे प प, म प, ध प, म ध ग, रे ग, म ध म ग, रे, सा; सा, रे नि़ ध़ प़, म़ ग़, म़ ग़, म़ ध़ सा, नि़ रे, सा, नि़ रे ग रे, सा, रे नि़, प़, म़ प़, म़ ग़, म़ ध़, सा; सा सा, प, म ध प, म ग, ध म ग, रे ग रे सा, नि़ रे सा; प, म ग, प, ध ग, रे ग, म ध म ग, ग रे सा, नि़ रे सा । तीव्र ध लगानेवाले प्रकार का साधारण चलन ऐसा रहेगा – सा, नि़ रे सा, रे ग, म ग, म ग, नि़ रे सा, नि़ रे ग, म रे ग, प ग, ध प ग, रे ग, रे, सा; नि़ नि़ रे नि़, प़, म़ ग़, म़ ग़, म़ ध़, रे सा; रे प, प म प, म, ग रे ग, म ध म ग, प ग, रे ग, रे सा, नि़ रे सा । ग, म ध म, सां, सां, नि, रें नि, रें नि, प, प म ग, नि म ग, नि म ग, रे ग, म ध म ग, रे सा । श्री–अंग का चलन ऐसा दिखेगाः सा, रे सा, ग प, प, म ध प, प म ध प, ग, रे ग, रे ग प, म ध म ग, रे प, ग रे सा । किन्हीं गायकों के मत से गौरा में श्री व मारवा का मिश्रण है । 'रे रे, ग रे सा, रे प म ध प, प ध ग, रे ग, म ध म ग, ग रे सा' । इस मालीगौरा राग में धैवत का परिणाम बढ़ने देना उचित नहीं होगा । इस राग में विश्रान्ति स्थान सा, ग, प ये स्वर माने जाते हैं । गांधारान्त तानें पूरिया का अंग देती हैं, पंचमांत तानें श्री–अंग प्रकट करती हैं और षड्जान्त तानें इन दोनों का सुन्दर योग करती हैं ।

कई गायक धैवत वैर्ज्य मानते है और इस प्रकार को गाते है । धैवत वर्जित करके गाना कठीन होगा । दक्षिण के एक तेलुगु ग्रंथ में 'हंसनारायणी' नाम का एक राग पूर्वी थाट में है, उसमें धैवत वर्ज्य है । धैवत वर्ज्य होने से क्षणभर के लिये वह मारवा थाट में माना जा सकता है । मालीगौरा राग में वादी ऋषभ और संवादी पंचम को माना गया है । इससे सायंगेयत्व अच्छा रहेगा तथा सुंदर दिखेगा । प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में मालिगौरा नाम दिखाई नहीं पडता । रत्नाकर, दर्पण, रागविबोध, स्वरमेल कलानीधि, सारामृत, चर्तुदण्डीप्रकाशिका, चंद्रिका, समयसार, अनुपविलास आदि ग्रंथों में 'गौरी' है परंतु मालीगौरा राग कहीं नहीं दिखाई देगा । गौरी अपने में ही एक स्वतंत्र प्रकार है ।

मालीगौरा के नाम के विषय में चर्चा करे तो कुछ विद्वानों के मतानुसार 'मालवगौड़' नामका अपभ्रंश ही मालीगौरा है । दक्षिण के कुछ ग्रंथकार मालवगौड़ को एक प्रसिद्ध थाट का नाम मानते है ।

अहोबल के मतानुसार,

अथ मालवगौलेऽस्मिन् गौरीमेलसमुद्भवे ।

त्यक्तधे रिस्वरोद्ग्राहे न ह्यारोहे तु गस्वरः ॥

आरोहे यदि गांधारः पादिर्मान्तो विधीयते ॥

गौलः

गौलस्तु गधवर्ज्यः स्याद्गौरीमेलसमुद्भभवः ।

मालवः

रिधौ तु कोमलौ यत्र गनी तीव्रौ च मालवे ।

षड्जावरोहणोद्ग्राहे सरिन्यासांशशोभिते ॥

रागविबोधे :-

मालवगौडः पूर्णः प्रदोषशोभोऽथवा रहितः ।

गांधारधैवताभ्यां निन्यासांशग्रहोऽथवा सान्तः ॥

रागतरंगिणी में ऐसा कहा है :

देशी तोडी देशकारो गौरो रागेषु सत्तमः ।

गौडी संस्थानमध्ये तु एते रागा व्यवस्थिताः ॥[1]

लोचन पंडित ने अपनी गौरी को 'श्रीगौरी' ऐसा स्वतंत्र नाम दिया है । किन्तु यहाँ 'गौर' ऐसा पुलिंग प्रयोग है । लोचनजी ने 'श्रीगौरी' को जिस श्लोक में कहीं है वो कुछ इस प्रकार है :

मालवः स्याद्गुणमयः श्रीगौरी च विशेषतः ।

चैत्री गौडी तथा प्रोक्ता पहाडीगौरिका पुनः ॥[2]

नामों के लिंग-विचार में विशेष सिद्धांत नहि होता, क्योंकी कोई ऐसा भी कहेता है कि, ''गौरा स्त्रीलिंग है, अतः लोचन पंडितजी के 'गौरः' को मालीगौरा मानकर चले तो कोई हानी नहीं है, यह एक सायंगेय प्रकार है अर्थात् इसमें मध्यम तिव्र ठीक रहेगा । धैवत का भी तीव्रत्व समझा जाएगा । 'नाद विनोद' में जो गौरा का स्वरूप दिया है वह दोनो मध्यम लेते है ।

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 275

2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 275

सा ऩि ध़ ऩि, सा, ग रे सा, रे रे प प, म म ग, रे सा, रे प, प ध, सा, ऩि रे ग रे सा, रे रे सा । यहाँ धैवत कोमल लगाया है, किन्तु यह मतभेद पाए गये है । रे रे रे प प, प प, ध प, म म, प ग रे रे रे, म ध प म, म म म, ग, रे रे सा । यहाँ कोमल मध्यम का ऐसा प्रयोग पसन्द नहीं आएगा । यह आधार 'कल्पद्रुम' में है :-

गौरद्युतिः कांचनचारूदेहा ।

सौंदर्यलावण्यकलायताक्षी ॥

वीणां दधाना सुरपुष्पगंधी ।

गौरा च प्रोक्ता सुकुतूहलेन ॥

मालवागौरिसंयुक्ता श्रीरागो मिश्रितः पुनः ।

गौरा ह्युत्पद्यते यत्र दिनान्ते गानमिश्रिता ॥

धैवतांशग्रहन्यासा संपूर्णा जायते स्वरैः ।

संध्याकाले प्रगातव्या श्रीरागस्य वरांगना ॥[1]

ध नि सा ग रे म प ध सा नि ध प । म म प सा ग रे स ध नि नि ध प । 'गीतसूत्रसार' में, मालीगौरा में कोमल ऋषभ व चीव्र मध्यम लगाने को उचित समझा है । संगीतसारकर्ता क्षेत्रमोहन स्वामी उसका ठाठ मारवा मानते हैं और विस्तार इस तरह करते हैं : ऩि सा ऩि रे ग प ध प, सा रे ग ध प म ग, सा रे सा, ऩि सा ऩि रे सा, प़ ऩि ध़ प़, म़ प़ म़ ध़ सा, सा, ऩि सा ऩि रे ग, ध प म ग, सा रे सा ऩि, सा रे सा ।

सुरतरंगिणी में ऐसा कहा है :

गौर और सोरठ मिले, मालीगौर सुनाई ।[2]

Capt. Willard कहते है कि, मालीगौरा के अवयव 'गौरी व सोरठ' है । सोरठ में तिव्र 'ध' लिया जाता है । कदाचित् वह भैरव थाट का सौराष्ट्र राग हो सकता है ।

'नगमाते आसफी' के ग्रंथकार ने गौरा में मध्यम व धैवत तिव्र माना है और राग का एकत्र रूप श्रीराग के समान बताया है । जैसे की - 'ऩि सा रे ग प' इन स्वरों से उत्पन्न होनेवाली अनेक

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 276
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 276

तानों में श्री राग का अंग सहज में ही दिखाई देगा । आगे धैवत तीव्र रखकर 'रे̱ रे̱ सा, ऩि रे̱ सा, ग रे, म ग रे̱, सा, रे̱ प प, म ध ग, रे̱ ग, म ध म ग, रे̱ ग, रे̱ सा, ऩि रे̱ सा, रे̱ ऩि, प़ म़ ग़, म़ रे̱ सा' ऐसा किया जाए तो श्री व पूरिया मिले हुए दिखाई देंगे ।

अगर प्रचलित मालीगौरा का आधार कहे तो वह कुछ इस प्रकार संभव हो सकता है :

लक्ष्यसंगीते :-

मारवामेलजन्योक्ता मालीगौरा मनीषिभिः ।

संपूर्णा रिग्रहांशासौ संध्याकालोचिता सदा ॥

पूरियाश्रीमिश्रणेन रूपमेतत्समुद्भवेत्

मंद्रमध्यस्वरैरेषा प्रायो लक्ष्ये समीक्षिता ॥[1]

शोधकर्ता द्वारा अध्ययन करते समय यह ज्ञात हुआ कि, ग्रंथकारों ने उन विभिन्न मतभेदों का उल्लेख किया है जो प्रचार में दिखाई देने में संभव है । कई ग्रंथकारों ने ऐसा माना है कि, पूरिया और श्रीराग, इन दोनों रागों के मिश्रण से यह प्रकार उत्पन्न होता है और यह मत को मानना उचित होगा । यह राग गाते समय जगह-व-जगह 'रे̱ ऩि प़', 'रें̱ ऩि प़', 'म ध ग', 'ऩि ध़ ऩि', 'रे̱ प प', 'म रे̱ ग', 'ध म ग' यह स्वरसमुदाय अवश्य सुनने को मिलेगा । इनकी सहायता से राग निर्णय करने में आसानी होगी । यह राग पूरिया, मारवा और जैत से बिलकूल भिन्न दिखाई पड़ता है ।

रे कोमल सुर तीव्र मा, दोनों धैवत मान ।

रे वादी - संवादि पा, मालीगौरा जान ॥

थाट :- मारवा

विकृत स्वर :- रे̱ म तथा ध (दोनों)

वर्जित स्वर :- ०

जाति :- संपूर्ण

वादी-संवादी :- रे प

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 277

गायन समय :– संध्याकाल

आरोह :– सा रेगमप धनिधसां

अवरोह :– सांनिधप मनिधमग रेसां

पकड़ :– मग, रेसा, नि़, रेनि़, प़, म़ग़, म़ ध़, सा, नि़रेग, रेसा

उठाव :– मग रेसा, नि़ रे नि़, सा, नि़ रे ग, रे सा

स्वर विस्तार :– ध़ नि़ सा रे नि़ ध़, नि़ ध़ प़, म़ ग़, म़ ग़, म़ ग़ म़ ध़, सा, नि़ रे सा ॥

प, म ध म ग, म ध म ग, रे सा ॥

सा, नि़ रे ग, नि़ रे नि़ ध़, म़ ध़, सा, ग म, नि, म ध म, म म ग रे सा ।

म ध, सां, सां, नि रें सां, नि रें नि ध, म नि ध म ग, ग रे सा सा ध, म ग,

ग रे सा ॥

पूरिया तथा श्री राग के मिश्रण से इस राग की उत्पत्ति हुई है । इस राग का विस्तार विशेषकर मंद्र व मध्य–सप्तक में होता हुआ मिलता है । पूरिया में पंचम स्वर लेने से मालीगौरा होता है, ऐसा भी कह सकते हैं । कुशल गायक इसमें दोनों धैवतों का प्रयोग करके रागरूप स्पष्ट कर दिखाते हैं । 'सा प' संगति श्री राग का अंग दिखाती है । ध़नि़सारेनि़ध़प, म़ध़सा इस स्वरमाला से मालीगौरा स्पष्ट होता है ।

राग : मालीगौरा – त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : कर याद प्रभु को आज, भव भंजन अलख निरंजन, पूरत मन के काज ।

अंतरा : एक भाव धर निरमल अंतर, छाँडत सब अभिमान,

भक्ति मुक्ति के दायक प्रभुवर राखत सबको लाज ।

मारवा थाट का मालीगौरा राग अप्रचलित माना गया है । प्रस्तुत बंदिश में रचनाकार सामाजिक हर एक मोहमाया से पर होकर बात कर रहे है । जहाँ वे अपने ही मन को लक्ष्य में रखते हुए सर्व सामान्य जनमत को बोध दे रहे है कि नित्य कर्म के प्रभु का नाम स्मरण अति अनिवार्य है, जहाँ शांत रस की अनुभूति हो रही है । शम स्थायी भाव स्वरूप और मोक्ष का संपादक शांत रस है।

रचनाकार का ये बोध कारण से उत्पन्न हुआ दिखाई पड़ता है । जिसमें नित्यता अथवा दुःखमयता आदि के कारण समस्त सांसारिक विषयों का निस्सारता का ज्ञान या तो साक्षात परमात्मा स्वरूप का ज्ञान ही इसका आलंबन है । स्थिर गंभीर स्वर संगतिओं से रची गई यह रचना शांत रस उत्पन्न करने का मुख्य कारण साबित हो रहा है । रचनाकार को सारे मोह त्याग होने का कारण मिला है जहाँ वो इस जीवन की अनिश्चितता का भास करवा रहे है । जो शांत रस का पहला कारण होने की ओर ध्यान केन्द्रित करता है । रचनाकार संपूर्ण विश्व को विभिन्न इन्सानों की मर्यादा को बताते हुए कहते है कि, राजा – रंक इस चक्र से दूर नहीं है । यहाँ शांत रस के साथ ही थोड़ा भय भी उत्पन्न होता दिखाई देता है । जहाँ वो सारी चतुराई के उपर मृत्यु को बता रहे है । ईश्वर के लिए हर जीव एक समान बताते हुए शांत रस उत्पन्न कर रहा है ।

स्थाई [1]

														म	म
														क	र
ग	–	रे	सा	नि़	ध़	नि़	रेनि़	(प)	–	–	म़ग़	म़	ग़	–	ग़
या	ऽ	द	प	भू	ऽ	को	ऽऽ	आ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज
ग़	ग़	ग़	ग़	म	–	ध़	म़	सा	सा	–	सा	नि़	रे	सा	सा
भ	व	भ	य	भं	ऽ	ज	न	अ	ल	ऽ	ख	नि	रं	ऽज	न
नि़	–	नि़	नि़	नि़	रे	ग	–	गप	मप	ग	रे	सां	–	–	सा
पू	ऽ	र	त	म	न	के	ऽ	काऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज
o				३				x				२			

अंतरा

ग	–	ग	म	–	म	ध	म	सां	–	सां	सां	सां	रे	सां	सां
ए	ऽ	क	भा	ऽ	व	ध	र	नि	ऽ	र्म	ल	अं	ऽ	त	र
o				३				x				२			

1. पटेल, चिंतन / उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीतना अप्रचलित रागोंनुं अध्ययन (महा शोधनिबंध) / पृ. 269

सां	–	सां	सां	सां	निरे	नि	नि	(प)	–	–	मग	म	–	ग	ग
छाँ	ऽ	ड़	त	स	बऽ	अ	भि	मा	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न
सां	–	नि	म	–	ध	म	ग	ग	–	म	ग	रे	रे	सा	सा
भु	ऽ	क्ति	मु	ऽ	क्ति	के	ऽ	दा	ऽ	य	क	प्र	भु	व	र
ध़	–	ऩि	ऩि	ऩि	रे	ग	–	गप	मप	ग	रे	सा	–	–	सा
रा	ऽ	ख	त	स	ब	को	ऽ	लाऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज
o				३				x				२			

4.4.2.7 राग : रत्नदीप

रत्नदीप राग अप्रकाशित रागों में से एक माना गया है । प्रचार में यह बहुत कम सुनने में मिलता है, दिन के चौथे प्रहर में शांत और गंभीर रस में इसे गाते हैं । जहाँ–तहाँ इस राग में जैतश्री की छाया दिखाई देती हैं, किंतु जैतश्री में कोमल मध्यम लगता है और इसमें वह स्वर नहीं है, इससे भेद स्पष्ट हो जाता है, अवरोह में निषाद की हानि भी इसे जैतश्री का आभास नहि होने देती है ।

चढ़ते रिध वर्जित किए, अवरोहन नी हानि ।

सम संवाद बनायकर, रत्नदीप पहिचानि ॥

थाट :– मारवा

विकृत स्वर :– रे म

वर्जित :– आरोह में रे ध, अवरोह में नि

जाति :– औड्डव–षाडव

वादी–संवादी :– सा, म

गायन समय :– दिन का चतुर्थ प्रहर

आरोह :– साग मध निसां

अवरोह :- सांध पम पम गरे॒सा

पकड़ :- नि॒सा, गम, पनिपम, गरे॒सा

राग : रत्नदीप (त्रिताल)

स्थाई : मधुर मधुर कोयलिया बोले,

सखीरी मोहे बिरहा सताए ।

अंतरा : पिया मिलन कू जिया तरसाए

घडी पल तोरी याद सताए ॥

राग रत्नदीप को शांत और गंभीर प्रकृति का राग माना गया है, परंतु प्रस्तुत बंदिश की रचना के शब्दार्थ में मुख्य नायक-नायिका का विरह पाया गया है । नायिका अपनी उलझन बताते हुए कहेती है कि, पिया से दूर उसे देखे बिना नायिका को चैन नहीं है । परिणाम स्वरूप निंद नहीं आती है और बैचेनी का अनुभव कर रही है । स्थिर स्वरसंगतिओं के साथ उलझन युक्त परिस्थिति करूण रस के साथ ही विप्रलब्ध शृंगार रस भी उत्पन्न कर रहा है । जहाँ नायक-नायिका का परस्पर अनुराग तो प्रगाढ रहेता है किन्तु मिलन नहीं हो पाता । इसीलिए यह बंदिश को विप्रलब्ध शृंगार रस की कह सकते है । गहराई में अवलोकन करे तो इस परिस्थिति को नायक के देशांतर गमन के कारण होने की वजह से इसे प्रवास विलब्ध रस उत्पत्ति मानी जा सकती है । विरह के परिणाम स्वरूप नायिका बताती है कि, एक-एक घड़ी नायिका को नायक के विरह में युग समान लग रही है, जो करूण रस की प्रबलता अपने आप दिखाई देती है ।

स्थाई [1]

प	म	-	प	म	ग	-	रे॒	साध़	नि़	सा	गम	प	-	प	-
म	धु	ऽ	र	म	धु	ऽ	र	कोऽ	य	लि	याऽ	बो	ऽ	ले	ऽ
ग	प	म	गम	ग	रे॒	सा	-	ग	म	प	म	ग	रे॒	सा	-
स	खी	ऽ	रीऽ	मो	ऽ	हे	ऽ	बि	र	हा	स	ता	ऽ	ए	ऽ
o				३				x				२			

1. पटेल, चिंतन / उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीतना अप्रचलित रागोंनुं अध्ययन (महा शोधनिबंध) / पृ. 265

अंतरा

प	म	ग	ग	म	म	प	म	नि	सां	सां	सां	गं	रें	सां	–
पि	या	ऽ	मि	ल	न	कू	ऽ	जि	या	त	र	सा	ऽ	ए	ऽ
सां	गं	मं	गं	रें	सां	सां	–	ध	प	ग	म	ग	रे	सा	–
घ	डी	प	ल	तो	ऽ	री	ऽ	या	ऽ	द	स	ता	ऽ	ए	ऽ
0				३				x				२			

4.4.2.8 राग : ललितपंचम

मारवा थाट का 'ललितपंचम' एक अप्रचलित राग है । 'ललितपंचम' और 'पंचम' यह दोनों राग अलग–अलग माने गये हैं । ललितपंचम में धैवत कोमल लगाते हैं और पंचम में तीव्र, इसी से ही यह राग–भेद स्पष्ट हो सकता है । कई ग्रंथकार 'ललितपंचम' को मालवगौड़ ठाठ में रखते हैं । 'चतुर' पंडित ने ललितपंचम के लिए कुछ कहा है जो की इस प्रकार है :

गौडमालवमेलोत्थो रागो ललितपंचमः ।
आरोहे तु पवर्ज्य स्यात् पूर्णवक्रावरोहकम् ॥
मध्यमस्यैव बाहुल्यान्निश्चितं चित्तरंजनम् ।
गानं चानुमतं रात्र्यां तृतीये यामके सदा ॥
ललितांगालंकृतो यत् स्वीकृतो गायनोत्तमैः ।
मध्यावप्युमौ ग्राह्याबिति लक्ष्यविदां मतम् ॥
अवरोहे यथायोग्यं पंचमस्य प्रयोगतः ।
गोपनं ललितांगस्य कुर्वन्ते गानकोविदाः ॥[1]

पंचम में हंमेशा थोड़ा ललितांग दिखता है और यह बिधान बहुसम्मत है । 'ललितांग' के कारण दोनों मध्यमों का प्रयोग आवश्यक बताया है । 'रागलक्षण' ग्रंथ में भी बताया है की आरोह में पंचम वर्ज्य किया जाता है ।

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 325

यह राग में दोनों मध्यम साथ-साथ जुड़े हुए है, वहाँ अगर तीव्र मध्यम छोड़ दिया जाए तो अधिक हानि नहीं होगी, क्योंकी वह बिलकुल गौण स्थान में है, जो कि कुछ इस तरह से दर्शाया जा सकता है : सां, नि ध, प म प, ध नि ध प, म म, ग, म ग म, म, नि ध प, ग, म ग रे सा, ऩि सा, म, म, सां, रें नि ध, नि ध प म, सां । ग ग म ध सां, नि सां, नि रें सां, सां, नि ध नि, रें गं, रें सां, रें नि ध म म, म, म ग, म नि ध म म ग, म ग रे सा, सा सा, म, म, सां, रें नि ध, नि ध, म म ।

इसमें वसंत का आभास होगा, कई लोगोंने इसे 'वसंतपंचम' भी कहा है । इसमें एक-दो जगह परज की भी छाया दिखेगी, परंतु परज और वसंत इन दोनों रागों में मुख्य भाग ललित के नहीं है । पंचम राग गाने में ललितांग को खास तौर पर लिया जाता है । यह सिद्धांत है जो की ध्यान में रखना आवश्यक है । इस प्रकार में दोनों मध्यम है और पंचम भी और इसमें ललितांग को परिमाण से आगे नहीं जाने देंगे । जिसका स्वरूप कुछ इस तरह हो सकता है :

ग, म ग रे सा, सा, म, म ग, (कोई सा म म म म ग, ऐसा करते हैं) प, म ध म म, म ग, म ध सां, सां, नि रें नि, प, म ध म, म, म ग, प ग, रे सा । म ध सां, सां, नि रें सां, गं रें सां, नि रें नि, म ध सां, रें नि, प म ध, म म, म, ग, प ग रे सा । कई विद्वान ऐसा भी मानते हैं कि, पंचम राग में दोनों मध्यम साथ-साथ जोड़कर न लिए जाएँ तो अधिक अच्छा रहेगा । 'संगीत-सार' के लेखक ने अपने पंचम से तीव्र मध्यम सचमुच ही छोड़ दिया है । वह सोहनी में भी कोमल मध्यम ही लगाता है, किंतु उसमें पंचम स्वर छोड़ देता है । इस कृत्य से राग-भेद स्पष्ट हो जाता है ।

विषयोचित्त राग के अध्ययन समय शोधार्थी द्वारा यह जानकारी ज्ञात की है कि, इसमें 'म ध' संगति तथा जगह-जगह 'प ग' संगति सुंदर लगती है । इसके दो प्रकार अवश्य ध्यान में रखने चाहिए । (१) हिंदोल अथवा सोहनी-अंग का, (२) दोनों मध्यम, तीव्र धैवत और अवरोह में पंचम लगनेवाला प्रकार । अवरोह में अगर ऋषभ हो तो संधिप्रकाश -रूप अधिक स्पष्ट होगा । अतः इस स्वर को कभी वर्जित नहीं करना चाहिए । 'सां नि ध, प' यह गायक लोग पंचम में खास तौर पर छोड़ देते हैं क्योंकि यह तान पृथक् राग की है । धैवत कोमल लगाने से 'ललितपंचम' करने में सुविधा रहेगी । पंचम राग में किसी ने ऋषभ छोड़ दिया तो उसकी परवाह नहीं । कुछ गायक इस राग में पंचम स्वर का प्रयोग 'ऩि सा, म, म, प ग, प, ध प म, प ग, म ध सां, ऐसा करते हुए भी

मिलेंगे तथापि 'प ध नि सां' अथवा 'सां नि ध प' ऐसा प्रयोग नही करते पाए जाते ।

कुछ ग्रंथकारों के मंतव्य इस राग के बारे में कुछ इस प्रकार पाए गए है :

रत्नाकरे :- **मध्यमापंचमीजातः काकल्यंतरराजितः ।**

पंचमांशग्रहन्यासो मध्यसप्तकपंचमः ॥

हृष्यकामूर्च्छनोपेतो गेयः कामादिदैवतः ।

चारूसंचारिवर्णश्च ग्रीष्मेऽह्नः प्रहरेऽग्रिमे ॥[1]

शुद्ध पंचम की भाषा दाक्षिणात्य बताई है और विभाषा आंधाली कही है । आंधाली का उपांग मल्हारी माना गया है ।

संगीतदर्पणे :-

रागः पंचमको ज्ञेयः पहीनः षाडवो मतः ।

प्रथमा मूर्च्छना यत्र षड्जत्रयविभूषितः ॥

केचिद्वदंति संपूर्णः श्रृंगाररसपूरकः ।

रक्तांबरो रक्तविशालनेत्रः ।

श्रृंगारयुक्तस्तरूणो मनस्वी ॥

प्रभातकाले विजयी च नित्यं ।

सदा प्रियः कोकिलमंजुभाषी ॥

सद्रागचंद्रोदये :-

पांशांतिकः पग्रहको रिरिक्तो -

सौ पंचमः प्रातरूपैति जन्य ॥[2]

यह राग को मालवगौड़ ठाठ में भी कहा गया है, जिसमें ऋषभ वर्ज्य है ।

रागमालायाम् :-

श्यामं तांबूलहस्तं करधृतकुमुदं मारवीमेलजातं ।

पत्रिं चारिं सुरेशं पिकमृदुवचनं वेणुकं पीतवस्त्रम् ॥

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 327

2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 326

लिप्तांगं यक्षपंकः शिरसि सुमुकुटं बालचंद्रार्कभालं ।

गायंतीहात्र नाके सकलसुरवराः पंचमं सुप्रभाते ॥[1]

यहाँ भी ठाठ भैरव माना है । ऋषभ वर्ज्य है, समय प्रातःकाल है । सोमनाथ पंडितने पंचम राग को भैरव ठाठ (उनका मालवगौड़ ठाठ) में माना है ।

राग विबोधे :-

पंचमं ऋषभविहीनः पांशन्यासग्रहो ह्युषसि ।[2]

लोचन पंडितने पंचम का ठाठ गौरी माना है, अर्थात् यह भैरव ठाठ ही होगा ।

मालवः पंचमः किं च जयंतश्रीश्च रागिणी ।

आसावरी तथा ज्ञेया देवागांधार एव च ॥

सिंधी आसावरी ज्ञेया ज्ञेया गुणकरी तथा ।

गौरीसंस्थानमध्ये तु एते रागा व्यवस्थिताः ॥

संगीतपारिजाते :-

पंचमो रिपहीनः स्यात्तीव्रगः सादिमः स्मृतः ।

मध्यमन्याससंयुक्तो मध्यमांशेन शोभितः ॥[3]

यह एक विलक्षण स्वरूप है, जो कुछ खमाज के दुर्गा जैसा दिखाई देगा । दुर्गा में निषाद कोमल ही है । इस प्रकार में मध्यम वादी होने से निराला रूप हो सकता है । Capt. Willard अपने ग्रंथ के कोष्ठकों में पंचम के अवयव 'ललित और वसंत' अथवा (अन्य मत से) 'वरारी, गौड़ व गुर्जरी' अथवा 'गांधार, मनोहर व हिन्दोल कहते है ।

कल्पद्रु में :-

ललितश्च वसंतश्च हिंदोलः पर्जसंज्ञितः ।

पंचमोभूत्सर्व ऋतौ वसंत गीयते ॥

पंचमग्रहसंयुक्ता संपूर्णा पंचमस्वराः ।

पधनिसारेगमश्च हिंडोलवल्लभा स्मृता ॥

प प ध ध नि सा रे ग म प रे सा । म प ध सा ग रे सा नि ध प म ग रे सा ।

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 328
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 328
3. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 329

त्रैव :-

ऋषभांशग्रहन्यासः पंचमस्वरवर्जितः ।

शेषरात्र्यां प्रगीयते पंचमो राग उच्यते ॥

ऐसा है - रे म प ध नि सा ग म ध रे सा ग रे सा नि प म ।

वसंतहिंदोलललित मिलि मालकोश पुनि ठान ।

षट राग सुर लेतही पंचम होय सुगान ॥

इस शास्त्र के आधार से नादविनोदकार ने पंचम का आलाप कुछ इस तरह बताया है : प ग रे सा, ध ध म म प प ध प ग, म ध नि रें नि ध म ग रे सा । म ध म ध नि सां, सां गं रें सां । नि रें नि ध म ग रे सा, प प प ध प ग, नि रें नि ध म ग रे सा, ग रे रे सा ।

इस तरह कई अलग-अलग मत अलग-अलग ग्रंथकारों मे दिये है ।

रागः पंचम एष सर्वविदितो युक्तो वसंतस्वरैः ।

वादी मध्यम एव यत्र विलसत् संवादिषड्जो मतः ॥

आरोहे ऋषभं न संस्पृशति यो वर्ज्यषभोऽपि क्वचिद् ।

रात्रावंतिमयामके सुमतिभिर्मंजुस्वरं गीयते ॥

थाट	:-	मारवा
विकृत स्वर	:-	आरोह में 'प'
वर्जित	:-	०
जाति	:-	संपूर्ण
वादी-संवादी	:-	म, सा
गायन समय	:-	प्रातःकाल
आरोह	:-	निरेगम, मग, मधनिसां
अवरोह	:-	सांनिध, मधममग, पग रेसा
पकड़	:-	मधनि, धप, धम, पग, रेसा

राग : ललितपंचम - त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : बरनि न जाय महिमा तेरो, बरनत हारे मुनि जन देव ।

अंतरा : नाम अनन्त अनन्त रूप अनगिन भुवन के हो भूप, 'रामरंग' चरण शरत देहो देव ।

प्रस्तुत बंदिश में रचनाकार प्रभु को प्रार्थना करते हुए कह रहे है कि, प्रभु के शरण के आसित है । ज्यादातर रचनाओं में शृंगार एवं करूण रस पाए जाते है । बहुत ही कम रचना शांत, हास्य एवं वीर रस उत्पन्न करती है, जिनमें से यह एक बंदिश है । शब्दानुसार रचनाकार बेहद शांत एवं स्थिर भाव उत्पन्न कर रहे है । जिसमें प्रभु के गुणगान गाते हुए उनकी महिमा अपार और अनंत है ऐसा कह रहे है । उनका नाम लेने से ही सारे काम सफल हो जाते है और वह अपनी अपार शक्तियों से वरदान प्रदान करते है । ऐसे ही भक्ति समान प्रेम वैराग को बयान करता है । भक्ति की तिव्रता बताते हुए वैराग की संवेदना के साथ ही रचनाकार भक्ति की तिव्रता बता रहे है और इससे ही शांत रस की अनुभूति होती है ।

स्थाई [1]

															प
															ब
प	ग	मम	गम	ग	रे	सा	ऩि	रे	ग	म	–	म	गम	ग,	धम
र	नि	ऽऽ	नऽ	जा	ऽ	य	म	हि	मा	ऽ	ऽ	ते	ऽ	रो,	ब
ध	सां	–	सां	रें	नि	ध	म	ध	म	म	म	(म)	–	ग,	प
र	नि	ऽ	त	हा	ऽ	रे	मु	नि	ज	ऽ	न	दे	ऽ	व,	ब
३				X				२				०			

अंतरा

															म
															ना
ध	सां	–	सां	नि	रें	सां	सां	नि	–	रें	गं	रें	–	सां	सां
ऽ	म	ऽ	अ	न	ऽ	न्त	अ	न	ऽ	न्त	रू	ऽ	ऽ	प	अ
सां	नि	रें	नि	ध	ध	ध	म	–	ध	नि	ध	म	–	म,	प
न	गि	ऽ	न	भु	व	न	के	ऽ	हो	ऽ	ऽ	भू	ऽ	प,	रा
ग	रें	सा	सा	ऩि	रे	ग	म	ध	नि	म	ध	म	–	म,	प
म	रं	ऽ	ग	च	र	न	श	र	न	दे	हो	दे	ऽ	व,	ब
३				X				२				०			

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि (भाग–५) / पृ. 301

4.4.2.9 राग : वराटी

यह राग अप्रसिद्ध प्रकारों में से एक माना गया है, इसलिए इसे सुनने का संयोग क्वचित् ही प्राप्त होता है । अपने संस्कृत ग्रंथकार भी 'वराटी' नाम का उपयोग करते है । एक-दो जगह 'वराडी' यह नाम भी दिखाई में आता है । दक्षिण की ओर 'वराली' नाम से प्रचलित है । वराटी अप्रसिद्ध राग होने के कारण उसके स्वरूप के विषय में बहुत से मतभेद दिखाई दिये है । यह राग में तिव्र धैवत बड़ी असुविधा उत्पन्न करता है । राग बराटी एक प्राचीन और अप्रसिद्ध राग-स्वरूप है । 'संगीत-पारिजात' में शुद्ध बराटी, तोड़ी बराटी, कल्याण बराटी आदि प्रकारों का उल्लेख किया है; परन्तु इसका वर्तमान रूप अपने मूल रूप से नितान्त भिन्न हो चुका है । आधुनिक काल में इसे बराटी कहते हैं ।

यह राग मारवा थाट के जन्य रागों से एक माना गया है । जानकारों का ऐसा मत है कि तोड़ी, त्रिवेणी व देशकार के संयोग से यह बनता है । इसमें वादी स्वर गांधार और सम्वादी धैवत है । इसके आरोह में मध्यम तथा निषाद वक्र रूप से लिये जाते हैं । यह आरोहावरोह में सम्पूर्ण जाति का है । मध्यम दुर्बल होने के कारण इसमें सा ग और प स्वरों की संगतियाँ महत्व की होती है एवं अच्छी शोभा देती हैं । कोई इसमें धैवत कोमल लगाकर इसे पूर्वी थाट के अन्तगर्त मानते हैं । जानकारो के मतानुसार, भटियार और शुद्ध टंक के मिश्रण से इसकी उत्पत्ति होती है । पंचम तथा ऋषभ इसके वादी - संवादी माने जाते हैं । आरोह में मध्यम और निषाद वर्ज्य होने के कारण इसकी जाति औडव-सम्पूर्ण कही जाती है ।

यह संध्याकाल राग है । अनेक गायक इस राग का रूप सायंगेयत्व और संधिप्रकाश स्वीकार करते हुए दिखाई पड़ते है । बहुतो ने तीव्र मध्यम का प्रयोग उचित माना है । पूर्वांग वैचित्र्य सावधानी से संभालने का प्रयास प्रत्येक गायक में पाया जाता है । वराटी में 'प ध ग' यह विलक्षण टुकडा कई गायकों द्वारा लिया जाता है । यह टुकडा धैवत का अनिष्ट परिणाम हटाने के लिए बहुत उपयोगी प्रतीत होता है ।

पंचम पर अधिक ठहेरना उचित नहि है, जैसे की : 'प, ध ग, प' ऐसा करने से श्रोताओं को देशकार जैसे किसी प्रात:गेय राग का आभास होगा । यह 'प ध ग' टुकडा जैत, मालीगौरा आदि

रागों में भी है और उसे बहोत ध्यान से युक्ति से लगाना पड़ता है । वराटी में से 'सां, ध प' यह प्रात:गेय टुकडा टालना चाहिए । अवरोह में यद्यपि धैवत है तो भी ऐसे टुकडे से राग के सायंगेयत्व को हानी पहोंचने की संभावना रहती है । इसलिए इसको गायक अपने गायन में न उपयोग करते है । वराटी राग विभास का सायंगेय जवाब है, ऐसा भी कुछ गवैये मानते है ।

शोध दरम्यान शोधकर्ता द्वारा यह जानकारी हांसिल की है कि, विभास दो थाट में गाया जाता है । एक तो है भैरव थाट का प्रकार और दुसरा है मारवा थाट का प्रकार । वराटी का चलन कुछ ऐसा ही है तथापि विभास में उत्तरांग बहुत ही प्रबल और विचित्र पाया गया है । कोई गायक वराटी में धैवत–कोमल लगाने को कहते है, परंतु यह ग्राह्य नहि माना गया है । वराटी और शुद्ध वराटी के अनेक भेद कहे गये है । पंडित भावभट्ट वराटी के बारे में कुछ ऐसा मानते है :

आद्या शुद्धवराटी स्याद्द्वितीया कौंतली मता ।

तृतीया द्राविडी प्रोक्ता चतुर्था सैंधवी मता ॥

अपस्वरा पंचमीस्यात् षष्ठी हतस्वरा पुनः ।

प्रतापाद्या सप्तमी स्यादष्टमी तोडिकादिका ॥

नागवराटी नवमी पुन्नागा दशमी मता ।

एकादशी तु शोकाद्या कल्याणी द्वादशी मता ॥[1]

इनमें से प्रचार में एक–दो ही मिलेंगे । अहोबलने वराटी के आठ प्रकार कहे हैं और उनके स्वर ऐसे दिये है :

१. वराटी : सा रे ग म प ध नि सां ।

२. शुद्धवराटी : सा रे रे म प ध नि सां ।

३. तोड़ीवराटी : सा रे ग म प ध नि सां ।

४. नागवराटी : सा रे ग म प ध नि सां ।

५. पुन्नागवराटी : सा रे ग म प ध नि सां ।

६. प्रतापवराटी : सा रे ग म प ध नि सां ।

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 280

७.	शोकवराटी	:	सा रे रे म प ध नि सां ।

८.	कल्याणवराटी :	सा रे ग म प ध नि सां ।

वराटी का स्वरूप देखे तो वह कुछ इस प्रकार हो सकता है । प, ध ग प ध, म ध म ग, प ग, रे सा, सा, रे ग, म ग, रे सा, ऩि, रे ग, रे, म ग, रे सा, ऩि, रे ग, प ग, प, ध म ग, सा, प ध म ग, रे ग म ध म ग, प ध ग, रे ग, म ग, रे सा ।

उत्तरांग में कुछ सावधानी रखनी आवश्यक होगी । इस राग में अच्छी तरह से पूर्वी का रंग ले आना पड़ेगा, तो मालीगौरा अलग करने में सुविधा हो सकती है । वराटी में गांधार स्वरवादी हैं । वराटी में तार-स्थान तक गायक जा सकते है, परन्तु मालीगौरा में ऐसा करना बहोत से व्यक्ति पसंद नहीं करेंगे । वराटी में आरोह का निषाद दुर्बल है । किसी सीमा तक मालवी जैसा कृत्य इस राग में देखने को मिलेगा ऐसा कह सकते है । अवरोह में 'नि प' संगति वराटी में बहुत सुंदर है, ऐसा मालवी में नहि होता । वहाँ 'नि म' की संगति सुंदर दिखाई देती है । वराटी में 'प ध ग' तथा 'रें नि प' यह दो टुकडे तुरंत ही आकर्षित करते है । मालवी में 'ध' कोमल है । वराटी का उत्तरांग कुछ इस प्रकार गाया जाता है : 'प, प ध सां, सां, सां रें सां, सां रें नि, प, प ध ग, प म ध म ग, रे ग, रे सा', 'प ध ग, प ध, म ध म ग, प ग, रे सा, ये स्वर इस राग की विशेषता होगी । मालीगौरा में 'प ध सां, सां, रें सां' इस प्रकार का उपयोग नहीं करते । वराटी में गान्धार और धैवत के साथ मध्यम व पंचम बारम्बार जोड़ देने में सारी खूबी है । ऩि रे ग, रे ग, म ग, प ग, प ध म ग, रे ग, म ध म ग, ग रे सा । रे ग, प, प ध ग, म ध, सां, रें नि प, प ध, म ग, प ग, रे सा, सा रे ग रे सा, रे ग रे सा, प म ध म ग, सां, नि प, म ध म ग, प, ध ग, रे ग, म ध म ग, म ग, रे सा । इस प्रकार में जैत अथवा मालीगौरा दिखाई नहीं देगा । ऐसा करने से फिर पूरिया और मारवा ये राग पास-पास में आने लगेंगे ऐसा प्रतीत होता है, परंतु यह सब रागों भिन्न-भिन्न श्रुतिओं के माने जाए तो विसंगती न होगी । भिन्न-भिन्न श्रुति कुछ प्रकार मानी गई है :

वराटी :	रे कोमल, ग तीव्रतम, म तीव्र, ध शुद्ध, नि तीव्र ।

मारवा :	रे कोमल, ग तीव्र, म तीव्र, ध शुद्ध, नि तीव्रतर ।

पूरिया : रे कोमल, ग तीव्र, म तीव्र, ध शुद्ध, नि तीव्रतर ।

विषयोचित्त राग का अध्ययन करते समय शोधार्थी द्वारा यह जानकारी प्राप्त हुई है कि, इस राग पर थोड़ा-बहुत मारवा थाट के जैत की छाया आ जाती है । विस्तार करते समय इसे बड़ी सावधानी से बचाना पड़ता है, क्योंकि इसमें और पूर्व कल्याण राग में गड़बड़ी होना संभव है । किन्तु सिर्फ मध्यम-निषाद स्वरों के प्रयोग से यह राग ऊपर बताये हुए दोनों रागों से भिन्न हो जाता है । जहाँ बराटी के केवल आरोह में 'म' और 'नि' वर्जित होते हैं, वहाँ जैत के आरोह तथा अवरोह के उभय स्थानों में ही ये स्वर वर्जित हैं । किन्तु कुछ गायक इसमें कम प्रमाण में तीव्र मध्यम लगाते हैं । फिर पूर्वकल्याण सम्पूर्ण जाति का राग होने के कारण इसके आरोह में 'मनि' व्यवहार में लिये जाते हैं । अत: इन दोनों के चलनों में काफी अन्तर दृष्टिगोचर होता है ।

'गीतसूत्रसार' के लेखक बेनर्जी के मतानुसार, वराटी में 'रे ध' कोमल और 'म' तीव्र है तथा यह राग संपूर्ण माना हैं । क्षेत्रमोहन स्वामीने भी वराटी राग को संपूर्ण बताया है और उसके स्वर इस प्रकार बताये हैं : ऩि सा ऩि सा, सा रे प म ग सा रे सा सा सा सा रे प प म प ध म ग सा रे ग रे सा । ग म ध सां नि सां नि सां सां सां रें गं रें रें सां नि सां, प नि ध प, नि सां, प नि ध प, ग प म ग, प म ग, सा रे ग रे सा ।

कुछ ग्रंथों के मतानुसार, राग वराटी इस प्रकार मिला है :

संगीतपारिजाते :-

रिकोमला गतीव्रा या कोमलीकृतधैवता ।

निना तीव्रेण संयुक्ता वराटी धैवतादिका ।

मतीव्रतरसंपन्नांदोलनेन मनोहरा ॥

पंडित अहोबल शुद्ध वराटी का स्वर स्वरूप इस प्रकार बताया है ।

अथ शुद्धवराट्यां तु रिगौ कोमलपूर्वको ।

मस्तु तीव्रतरो धः स्यात् कोमलस्तीव्रनिः स्वरः ॥(1)

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 283

इसका स्वरूप कुछ इस प्रकार हो सकता है : ध ध नि सा रे ग म प म ग रे सा नि ध प नि सा । रे ग ग रे सा रे सा रे ग म ग रे सा । ऐसे प्रयोग दक्षिण की ओर आज भी दिखाई पड़ते है । दोनों निषाद और दोनो मध्यम हिन्दुस्तानी गायको द्वारा साथ-साथ जोड़ते हुए दिखाई पड़ते है ।

पंडित सारंगदेव ने अपने उपांग रागों में वराटी के कुछ प्रकार बताये है, जो की इस तरह पाये गये है । (१) कुन्तल वराटी (२) द्राविडी वराटी (३) सिधवी वराटी (४) अपस्थान वराटी (५) हस्तस्वर वराटी (६) प्रताप वराटी (७) शुद्ध वराटी ।

सारंगदेव के मतानुसार 'सौवीर' नामक ग्राम - राग की जो भाषा (भार्या) सौवीरी है, उसमें से शुद्ध वराटी उत्पन्न हुई हैं ऐसा पंडितजी मानना है । उनके मुताबिक,

षड्जमध्यमया सृष्टः सौवीरः काकलीयुतः ।

गाल्पः षड्जग्रहन्यासांशकः षड्जादिमूर्च्छनः ॥

x x x

सौवीरी तद्भवा मूलभाषा बहुलमध्यमा ।

षड्जाद्यंताऽत्र संवादः सधयो रिधयोरपि ॥

तज्जा वराटिका सैव चटुकी धनिपाधिका ।

सन्यासांशग्रहा तारसधा शांते नियुज्यते ॥[1]

पंडित रामामात्य ने शुद्ध वराटी व कुन्तल वराटी यह दो प्रकार बताये हैं ।

(१) शुद्ध वराटी : सा, रे कोमल, रे तिव्र, म तिव्र, प, ध कोमल, नि तिव्र ।

(२) कुन्तल वराटी : सा, रे तिव्र, ग तिव्र, म, प, ध तिव्र, नि तिव्र ।

पं. रामामात्य व पं. अहोबल के वर्णनों में कुछ साम्यता दिखाई देती है ।

भूपाली च वराटी च तोडी प्रथममंजरी ।

तुरूष्कतोडिका चेति हिंदोलस्य हि नारिकाः ॥

स्वागारे स्वेच्छया या मृदुतरवचनैः क्रीडिता बालिपुंजैः ।

चित्रं वस्त्रं दधाना कुसुमसुकबरी चामरैर्वीज्यमाना ॥

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 284

नानाश्रृंगारयुक्ता मदनसहचरी कोमलांगी सुगौरा ।

सायं पूर्णा त्रिषड्जा ह्यनलगतिगनी राजते सा वराली ॥[1]

यह भैरव ठाठ का प्रकार दिखाई देता है । सायंगेय होने के कारण इसमें तीव्र म ठीक ही लिया गया है । कोई शुद्ध म कहेंगे, कोई दोनों म लगाएँगे ।

संगीतदर्पणे :- षड्जग्रहांशकन्यासा वराटी कथिता बुधैः ।

प्रथमा मूर्च्छना ज्ञेया संपूर्णा कीर्तिवर्धिनी ॥

विनोदयंती दयितं सुकेशी सुकंकणा चामरचालनेन ।

कर्णे दधाना सुरवृक्षपुष्पं वरांगनेयं कथिता वराटी ॥ [2]

Capt. Willard के मुताबिक, यह है कि वराटी में देशकार, तोड़ी और त्रिवण इन रागों का मिश्रण है । 'सुरतरंगिणी' में ऐसा कहा है : देशकार तोडी त्रिवण मिले बरारी होई ।

'संगीतसार' में वराटी का प्रकार इस तरह बताया है :- 'गोरो जाको रंग है । सुंदर शरीर है । हाथ में कंकण पेहरे हैं और अपने पति के उपर चंवर ढलावत है । सुंदर जाके केश है । कल्पदक्ष के फुल कानन में पेहरे है । शास्त्र में यह सात स्वरनसों गाई है । सा रि ग म प ध नि सां ।

वराटी का जो प्रचलित स्वरूप हैं वह कुछ इस प्रकार बताया है :

मारवामेलके प्रोक्ता वराटी बुधसंमता ।

आरोहेऽप्यवरोहे च संपूर्णा परिकीर्तिता ॥

गांधारोंगीकृतो वादी धैवतोऽमात्यसंनिभः ।

सांदोलनं मतं गानं प्रदोषे सुखदं नृणाम् ॥

प्राचुर्यान्मारवांगस्य क्वचितच्छंकनं भवेत् ।

मारवायांतु पोनत्वमतस्तस्याः स्फुटा भिदा ॥

केचिदुपदिशंत्यत्र कोमलत्वं तु धैवते ।

वादित्वमपि तत्रस्थं न तद्भाति सुसंगतम् ॥

---

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 285
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे - संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 286

गपयोः संगतिं केचिन्निर्दिशंति विचक्षणाः ।

न तद्दोषास्पदं भूयाद्दौर्बल्यान्मध्यमस्य च ॥(1)

– लक्ष्यसंगीते

इस श्लोक में यह कहेना चाहते है कि, यह राग संपूर्ण है तथापि इसमें मध्यम सप्तक में निषाद का प्रयोग अत्यंत मर्यादित होता है क्योंकि धैवत को उत्तरांग में महत्व देना पड़ता है । इस राग में 'प ध ग' और 'नि प' ये टुकडे योग्य रीती से लगाना बड़े कुशल का कार्य है । 'ऩि रे ग, रे ग, म रे ग, प ध ग, म ध म ग, रे ग, ध म ग, प ग, रे, सा, ऩि सा, ऩि रे सा, प ग प, प ध ग, ऩि रे ग, म म ध, म ग, प ग, रे सा । प प ध सां, सां, सां रें सां, रें नि प, प ध ग, रे ग, म ग, सां प प, ध ग, रे ग, म ग रे सा ।' राग वराटी का कुछ इस प्रकार विस्तार हो सकता है । थोड़ा सा भी उत्तरांग प्रबल होगा तो तुरंत ही विभास और देशकार सुनाई देगा ।

आरोहन सो मनी तजको सायंकाल बराटी ।

रीखब कोमल मध्यम तिवर सुध सुर है बाकी ॥

थाट :– मारवा

विकृत स्वर :– रे कोमल, म तीव्र बाकी के शुद्ध

वर्जित :– आरोह में म और नि

जाति :– औडव–संपूर्ण

वादी–संवादी :– ग, ध

गायन समय :– सांयकाल

आरोह :– सा रे ग प ध सां

अवरोह :– सां नि ध प, म प ग, रे रे सा

पकड़ :– नि ध प, म प ग रे रे सा

वराटी राग को वरारी भी कहते है, सायंगेय राग होने के कारण मारवा अंग से यह राग गाया जाता है । किंतु पंचम स्वर लगने के कारण यह राग मारवा से स्वतंत्र पाया गया है । साप तथा गप

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग–३) / पृ. 287

की स्वरसंगतियाँ इसमें महत्त्वपूर्ण हैं । मध्यम स्वर इसमें गौण रखना ही उचित है । तोड़ी, त्रिवेणी तथा देशकार को मिलाकर इस राग की उत्पत्ति हुई है । कोई–कोई गुणीजन कोमल धैवत लगाकर इसे पूर्वी ठाठ के अंतर्गत मानते हैं । प्राचीन ग्रंथों में वराटी के अनेक प्रकार पाए जाते हैं ।

राग : बराटी – एकताल (मध्यलय)

स्थाई : बिरहानी बिरहा लागि मोरे जिया के अन्दर ।

अंतरा : तन बैरागी मन चचंल, सदारंग पिया के मन अन्दर ॥

राग वराटी मारवा थाट के अप्रचलित रागों में से एक राग है । प्रस्तुत बंदिश के बारे में चर्चा करे तो रचनाकार द्वारा पहेले ही शब्द से करूण रस की उत्पत्ति दिखाई देती है । जहाँ की नायिका को विरह भावना की अनुभूति करती पाई गई है । यह विरह की परिस्थिति विप्रलब्ध शृंगार रस की उत्पत्ति कर रही है । जहाँ नायक नायिका का अनुराग तो प्रगाढ है किन्तु मिलन नहीं हो रहा । इस विरह के कारण दु:खवाला करूण रस उत्पन्न हुआ दिखाई देता है । नायिका का बीध–मध्य स्थिति का वर्णन किया है, जहाँ नायिका एक सहारा ढूँढ रही है । नायिका अपनी व्यथा को बयान कर रही है और नायिका की व्यथा की तिव्रता स्वाभाविक रूप से दिख रही है, जो नायिका का विरह दर्शाते हुए करूणता का रस उत्पन्न कर रही है ।

स्थाई [1]

X		0		२		0		३		४	
										प,गरे̱	ऩिध़,सा
										बि,रऽ	हाऽ,ऽ
रे̱	–	सा	रे̱सा	रे̱	गग	प	–	प	निधनिध	म	प
नि	ऽ	ऽ	ऽऽ	बि	रऽ	हा	ऽ	ला	ऽऽऽऽ	ऽ	गि
धप (कण ध)	मग	रे̱	गग (कण म)	प	–	प	मग	रे̱गरे̱	सा		
मो	रेऽ	जि	या	के	ऽ	अ	न्दऽ	ऽऽऽ	र		

1. हिराणी, चंद्रकांत / अप्रचलित राग / पृ. 59

अंतरा

x		०		२		०		३		४	
										गग	पध
										तन	बैऽ
सां	–	सांरें	–सां	गंरें	मंगं	गंरें	सां	सां	निरें	नि	ध
रा	ऽ	ऽऽ	गी	मन	चंऽ	चऽ	ल	स	दाऽ	रं	ग
निध	मप	प	–	रेग	प	प	मग	गरे	सा		
पिऽ	याऽ	के	ऽ	मऽ	न	अ	न्दर	ऽऽ	र		

4.4.2.10 राग : साजगिरी

राग साजगिरी सांयगेय प्रकारों में से एक माना गया है । साजगिरी नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि, यह राग एक आधुनिक और यावनिक प्रकार होगा । प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में यह नाम कहीं नहीं मिलता । हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में यह राग यदा–कदा मिल जाता है । साजगिरी राग कैसे और कब प्रचार में आया यह निश्चिंत करना कठिन है ।

मि. बेनर्जीने साजगिरी को भैरव थाट के समान माना है और उसमें ऋषभ वर्जित माना है । साजगिरी में धैवत तिव्र मानते है और मध्यम भी तिव्र लगाते हैं । पुनःसाजगिरी में दोनो मध्यम और दोनों धैवत लगते है । यह एक मिश्र राग माना गया है । साजगिरी में पूरिया और पूर्वी का मेल देखा गया है । साजगिरी के उत्तरांग में प्रत्यक्ष पूर्वी का ही टुकडा उसके कोमल धैवत सहित प्रविष्ट होती पाई जाएगी और यह करने से यह मालीगौरा से बिलकुल पृथ्थक हो जाएगा । यह मिश्रण चमत्कारीक है लेकिन मतभेद तो पाए ही गये है ।

शोधकर्ता द्वारा विषयोचित्त राग का अध्ययन करते समय या जानकारी प्राप्त की है कि, साजगिरी में वादी गांधार है, मारवा और मालीगौरा रागों का वादी स्वर ऋषभ है । पूरिया और वराटी का वादी स्वर गांधार है तथा जैतकल्याण और जैत का वादी स्वर पंचम है । यह प्रकार स्वतंत्र प्रकार माना गया है । इस राग का चलन कुछ विलक्षण ही होता दिखेगा । कोमल मध्यम

आने से पूरिया तो दूर होगा, पूर्वी का कोमल 'म' और भी खुला हुआ आरोह में दिखेगा । 'ग, म, नि नि, म ध ग' साजगिरी में पूरिया और पूर्वी का योग है । 'म ग, म प, ध प, सां, नि रें सां, सां नि ध, रें नि ध नि ध प' ऐसा उत्तरांग में पाया गया है । जैसे की साजगिरी पूरिया और पूर्वी का योग है तो वह कुछ इस प्रकार हो सकता है । 'प, प, प ध ग, प, ध सां, नि रें नि, म ध ग, ग म ग म ग म प म ग'। इस तरह करने से दोनो रागों का योग अच्छा और सुसंगत दिखेगा ।

मारवामेलसंजाता साजगिरी जनप्रिया ।
आधुनिका मता तज्ज्ञैः संपूर्णा गांशमंडिता ॥
धैवतद्वंद्वमत्राहुः संगतिर्निमयोः शुभा ।
गानं गुणिसमादिष्टं सायंकालेऽति शोभनम् ॥
ईषत्स्पर्शः शुद्धमस्य नैव स्याद्रक्तिघातकः ।
पूर्यायाः पूर्विकायाश्च तेन स्याप्प्रस्फुटा भिदा ॥
पूरियांगभूषितेयं रागिणी यत्सुसंमता ।
मंद्रमध्यस्वरैर्गानमवश्यं सुखमावहेत् ॥
पूर्वीपूर्यामिणेन साजगिर्या जनिः स्मृता ।
रूपमेतन्मतं प्रायो विरलं लक्ष्यवर्त्मनि ॥ – लक्ष्यसंगीते

पूर्वीपूर्यामिश्रिता साजगीरी गांधारांशा पूर्णारोहावरोहा ।
ईषच्छुद्धो मध्यमो धैवतौ द्वौ प्रोक्तौ यस्यां गीयते सायमेव ॥ – कल्पद्रु मांकुरे

पूर्वीमेलसमुत्पन्ना गांशा साजगिरिर्मता ।
द्विधैवता च संपूर्णा क्वचित्कोमलमध्यमा ॥ – चंद्रिकासार

जबही गुनिजन पूरवी द्वै धैवतसें गाइ ।
तबही सारे जगत में साजगिरी कहलाइ ॥[1] – चंद्रिकासार

मारवा थाट के पंचम लगनेवाले रागों में 'म ध ग, प ध ग, प ध सां' छोटे टुकड़े अत्यंक कलापूर्ण है । जैत, मालीगौरा और वराटी इन रागों में यह टुकड़े महत्वपूर्ण प्रतीत हुए है । साजगिरी

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण / भातखंडे – संगीतशास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति)(भाग-३) / पृ. 285

में 'प ध ग, प ध सां' यह भाग वास्तव में उपयोगी है । साजगिरी राग का राग विस्तार कुछ इस प्रकार कर सकते हैं।

'सा, ऩि ऩि, <u>रे</u> ग, म <u>रे</u> म ग, <u>रे</u> सा, ऩि <u>रे</u> सा, सा, <u>रे</u> सा, ऩि ऩि, <u>रे</u> ग ऩि <u>रे</u> सा, ग <u>रे</u> सा, सा, ऩि ध़ सा, ऩि सा, <u>रे</u> ऩि <u>रे</u> ग, ऩि <u>रे</u> ऩि <u>ध़</u>, म़ <u>ध़</u> म़ सा । <u>रे</u> सा, ग ग म, नि नि म ध ग, ग म ग म प म ग, <u>रे</u> सा । ऩि <u>रे</u> सा, ग <u>रे</u> सा, ऩि ऩि <u>रे</u> ऩि <u>ध़</u>, म़ <u>ध़</u> सा, सा, ग <u>रे</u>, ग म, <u>रे</u> म ग, <u>रे</u> सा, ऩि <u>रे</u> सा; सा <u>रे</u> <u>रे</u> सा, ऩि <u>रे</u> ग <u>रे</u> सा, म <u>रे</u> म ग, ग म ध ग, म ग, <u>रे</u> ग, म ग, <u>रे</u> सा, ऩि <u>रे</u> सा; म म ग, म ग, ध ग म ग, ग म, नि नि म ग, ग म ग म, ग, <u>रे</u> सा, ऩि <u>रे</u> सा । म म ग, प, <u>ध</u> प, सां, सां, नि <u>रें</u> सां, नि <u>रें</u> गं <u>रें</u> सां, सां सां, नि नि, <u>रें</u> नि <u>ध</u> प, प ध ग, प, प, ध सां, नि <u>रें</u> नि म ध ग, ग म, ग म, ग म प म ग, म ग, <u>रे</u> सा, ऩि ऩि <u>रे</u> ग म <u>रे</u> म ग, <u>रे</u> सा, ऩि <u>रे</u> सा ।' ऐसे राग साजगिरी का स्वरविस्तार करके राग को थोडा समझना आसान होगा ।

राग : साजगिरी

कोमल रे, दोउ मध लगत, गनि संवाद अनूप ।

ठाठ मारवा में सुघर, साजगिरी को रूप ॥

थाट :– मारवा

विकृत स्वर :– <u>रे</u>, म ध (दोनों)

वर्जित :– ०

जाति :– संपूर्ण

वादी–संवादी :– ग, नि

गायन समय :– संध्याकाल

आरोह :– ऩि <u>रे</u> ग, म ग म प, ध प सां

अवरोह :– सां नि ध, म ध म ग, प ग <u>रे</u> सां

उठाव :– ऩि <u>रे</u> ग, म ग <u>रे</u> सा, ग म, नि ध, म ध म ग, प ग, रे सा ॥

स्वर विस्तार :– सा, ऩि <u>रे</u> ग <u>रे</u> म ग, <u>रे</u> सा, सा, ऩि <u>रे</u> ग <u>रे</u> सा, सा ॥

सा, ऩि रे̱ ग, ऩि रे̱ ऩि ध़, म़ ध़, सा, ग म, नि, म ध म, म म ग रे̱ सा ।

म ग, म प, ध प, सां, सां सांनि, रें नि ध प, प ध ग, प, प, ध सां ॥

नि रे नि, म ध ग, म म ग रे सा ॥

इस राग में नि म की स्वरसंगति भली मालूम देती है । पूर्या तथा पूर्वी के मिश्रण से इस राग की उत्पत्ति हुई है । इसका गायन प्रायः मध्य तथा मंद्र–सप्तकों में होता है, शुद्ध मध्यम पर विश्रांति (ठहराव) अच्छी लगती है और इस विश्रांति के द्वारा ही साजगिरी राग पूर्या तथा पूर्वी से स्वतंत्र रहता है । यह एक अप्रसिद्ध और आधुनिक प्रकार है ।

राग : साजगिरी – धीमा त्रिताल

स्थाई : गरीब नवाज मोरी अरज सुन लीजिये ।

अंतरा : जो ध्यावे सो पावे मन के, रामरंग की सुध लीजिये ॥

हिन्दुस्तानी संगीत में ईश्वर प्राप्ति के मार्ग का अमूल्य पथ हुआ करता था । इसी वजह से प्राचीन बंदिशों में ईश्वर के प्रति प्रेम, भक्ति, लीला, गुणगान के शब्द दिखते है । प्रस्तुत बंदिश में रचनाकार अपने खुदा से, गरीब नवाज से बिनती करते हुए पाए गये है और गरीब नवाज को अपनी अरज सुनने के लिए बिनती कर रहे है । जो करूण रस के साथ ही शांत रस उत्पन्न होता दिखाई पडता है । अपने खुदा के लिए भक्ति समान प्रेम को दर्शाया जा रहा है । रचनाकार बोध स्वरूप विभिन्न इन्सानों को यह बताना चाह रहे है कि, गरीब नवाज का ध्यान धरने से मन के सारे दुःख खतम हो जायेंगे । केवल गरीब नवाज का ध्यान धरने से ही अपने जीवन की सारी बाधाएँ दूर हो सकती है, जो समर्पण का भाव उत्पन्न कर रही है । खुदा के प्रति समर्पण की भावना और सब मोह को त्याग कर वैराग को दर्शाता है । यहाँ भक्ति रस का उत्पन्न होना स्वाभाविक बात है ।

स्थाई [1]

म	ग	रे̱	सा	|	(सा)	ऩि	रे̱	ग	|	ग	म	–	(ध)नि	|	(ध)म	म	ग	–
ग	री	ब	न	|	वा	ऽ	ज	ऽ	|	मो	री	ऽ	अ	|	र	ऽ	ज	ऽ

1. झा, रामाश्रय (रामरंग) / अभिनव गीतांजलि (भाग–५) / पृ. 287

ध	म	–	प	प	(–)	म	ग	ग	म	[ध]नि	–	[ध]म	ग	नि़रे	–ग
सु	न	ऽ	ऽ	ली	ऽ	जि	ऽ	ये	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ
३				X				२				0			

अंतरा

म	ग	म	ध	सां	–	सां	–	धनि	रेंगं	रें	सां	रें	नि	ध	प
जो	ऽ	ध्या	ऽ	वे	ऽ	सो	ऽ	पाऽ	ऽऽ	वे	म	न	ऽ	के	ऽ
प	ग	ग	म	म	[ध]नि	[ध]म	ग	ध	म	प	ग	मग	रेसा	नि़रे	गम
रा	म	रं	ग	की	ऽ	ऽ	ऽ	सु	ध	ली	ऽ	जिऽ	येऽ	ऽऽ	ऽऽ
३				X				२				0			

4.4.2.11 राग : मृगनयनी

यह एक अप्रसिद्ध 'मारवा' मेल से उत्पन्न होता राग है । इसमें पंचम और निषाद संपूर्णतः वर्जित हैं तथा रिषभ कोमल व दोनों मध्यम लगातार–ललितांग पद्धति से आते हैं, परन्तु इसमें निषाद वर्जित रहने के कारण ललित इससे बिलकुल ही अलग रहता है ।

शोधकर्ता द्वारा विषयोचित्त राग का अध्ययन करते समय यह ज्ञात हुआ कि, इसका वादी स्वर मध्यम तथा संवादी स्वर षड़ज है । आरोह में गंधार दुर्बल होता हुआ दिखता है । रेम, रेम म ग ऽ रे ऽ ऽ सा, यहां ललित राग का भास होता है, म ऽ ध ऽ ऽ सां रें ऽ सां सां ऽ ऽ ध म म, यह स्वर संगति अत्यन्त मधुर है व निषाद बिलकुल ही वर्जित होने के कारण ललित राग से अलग लगता है । यह बहुत ही शान्त प्रकृति का राग है इसका गाने का समय शेष रात्रि है । मुख्यांग रे ऽ म म ग रे सा ऽ ऽ ध़ म़ ध़ ऽ सा ऽ ऽ रे सा ।

दोउ मध्यम, कोमल रिषभ, पंचम–नी को त्याग ।

म स वादी संवादि तें, गा मृगनयनी राग ॥

थाट :– मारवा

विकृत स्वर :– रे कोमल, दोनों मध्यम और बाकी शुद्ध

वर्जित स्वर :- पंचम और निषाद

जाति :- औडव

वादी–संवादी :- म, सा

गायन समय :- रात्रि का अंतिम प्रहर

आरोह :- सा रे म, म ग, म ध सां

अवरोह :- सां ध म म, म ग रे सा

पकड़ :- रे ऽ म म ग रे सा ऽ ऽ ध़ म़ ध़ ऽ सा ऽ ऽ रे सा

राग : मृगनयनी – झपताल

स्थाई : गुनिवृन्द गावत, मृगनयनी रागिनी ।

रिषभ मृदु भावत, द्वि मध्यम तारिनी ॥धृ.॥

अंतरा : पंचम निषाद त्यज, प्रमुख मध्यम षड़ज ।

रूप ललितांगिनी निशि अम्बर धारिनी ॥

प्रस्तुत रचना में राग का वर्णन किया है, जिसमें राग की सारी विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है । प्रस्तुत रचना को राग का लक्षण गीत कहेना उचित माना जाएगा । राग के सारे लक्षणों को इस रचना में समाविष्ट किया गया है । जिसमें ऋषभ को कोमल दर्शाया है और दोनों मध्यमों का प्रयोग बताया है । इस राग में पंचम और निषाद को वर्ज्य करना उचित माना गया है जिससे यह एक औडव प्रकार का राग माना जाता है । वादी–संवादी मध्यम और षड्व को दर्शाया है । अत्यंत ही सुमधुर और यह निराले राग को गाने–बजाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर बताया है । यही सब दर्शाये हुए राग के गुण गुनी द्वारा भी गान किया जा रहा है और वह अपने आप में ही रागिनी उत्पन्न हो रही है जो एक ललितांग अंग को स्वाभाविक रूप से बयांन करता है जो अद्‌भूत रस को उत्पन्न करने की क्षमता रखता है ।

स्थाई [1]

^{ग}रे	म	ग	रे	सा	^{ग}रे	सा	^{ग}रे	म	म
गु	नि	वृ	ऽ	न्द	गा	ऽ	व	ऽ	त
^{ध}म	ध	^{ध}म	ध	सां	ध	म	^{ध}म	म	–
मृ	ग	न	य	नी	रा	ऽ	गि	नी	ऽ
मग	^{ग}रे	सा	$^{सा}$ध़	सा	$^{सा}$ध़	म़	ध़	सा	सा
रिऽ	ष	भ	मृ	दु	भा	ङ	व	ऽ	त
सारे	रेम	^{ध}म	म	^{म}ग	^{ग}रे	ग	^{ग}रे	म	–
द्वीऽ	ऽऽ	म	ध्य	म	ता	ऽ	रि	नी	ऽ
x		२			०		३		

अंतरा

^{ध}म	म	^{ध}म	म	^{म}ध	मध	सां	ध	$^{गं}$रें	सां
पं	ऽ	च	म	नि	षाऽ	ऽ	द	त्य	ज
$^{सां}$ध	सां	$^{गं}$रें	सां	रें	रें	$^{रें}$मं	$^{रें}$गं	रें	सां
प्र	मु	ख	म	ऽ	ध्य	म	ष	ड्	ज
(सां)	$^{गं}$रें	सां	$^{सां}$ध	सां	धसां	रेंसां	$^{सां}$ध	म	म
रू	ऽ	प	ल	लि	तांऽ	ऽऽ	गि	नी	ऽ
ध	म	मध	सांध	मम	गम	मम	गरे	सा	–
नि	शि	अंऽ	बऽ	रऽ	धाऽ	ऽऽ	रिऽ	नी	ऽ

1. हिराणी, चंद्रकांत / अप्रचलित राग / पृ. 45

4.4.2.12 राग : धन्यधैवत

राग धन्य धैवत मारवा थाट का एक अप्रचलित प्रकार है । इस राग में ऋषभ कोमल और मध्यम व निषाद स्वर वर्जित है । यह औडव–औडव जाति का राग है । इसमें शुद्ध धैवत वादी और कोमल ऋषभ संवादी स्वर हैं । इनका संवाद इस राग को सुंदर एवं मधुर बनाता है । शृंगार रस प्रधान इस राग को महफिल के अंत में गाया–बजाया जाता हैं । इस राग का गायन–समय प्रातःकाल बताया गया है ।

विषयोचित्त राग के अध्ययन दरम्यान शोधार्थी द्वारा यह ज्ञात हुआ कि, यह राग जैत का प्रातर्गेय जवाब है । शुद्ध धैवत होने के कारण इस राग के उत्तरांग में राग देशकार का आभास होता है, किन्तु ऋषभ लगते ही यह अलग हो जाता है । मारवा थाट के इस राग का वादी स्वर धैवत व संवादी कोमल ऋषभ है । गायन समय प्रातःकाल माना है । मुख्यांग सा ऽ सां ध ऽ प, ग प ध सां प, ग प रे, रे सा । इस राग में 'सां प' और 'ग प' की संगति बार–बार प्रयोग में लायी जाती है । 'सा ध ऽ ऽ सां प' तथा 'ग प ध प ऽ ग ऽ रे रे ऽ सा' इसकी राग–वाचकस्वर–संगतियाँ हैं ।

'राग–कोष' में भी राग धन्य धैवत का वर्णन मिलता है । इसमें राग का थाट, जाति, स्वर सभी पूर्व–विवेचन जैसा ही है सिर्फ राग का गायन समय प्रातःकाल के स्थान पर रात्रि का अंतिम प्रहर बताया है । इस के विपरीत अन्य विद्वानों के मतानुसार इस राग को देशाख्य (देवसाख कान्हड़ा) शृंखला का राग बताया है । ध–ग संवाद बताते हुए इस राग की जाति षाडव वक्र षाडव बताई है ।

रे कोमल ओड्डव कियो, मा, नी दिए हटाए ।

राग धन्यधैवत बन्यौ, ध–रि सम्वाद बनाय ॥

थाट :– मारवा

विकृत स्वर :– कोमल रे बाकी शुद्ध

वर्जित स्वर :– म और नि

जाति :– औडव

वादी स्वर :– ध

संवादी स्वर :– रे

गायन समय :– प्रातःकाल (रात्रि का अंतिम प्रहर)

आरोह :– सा रे ग प ध सां

अवरोह :– सां ध प ग प ध प – रे सा अथवा ग प ग रे सा ।

पकड़ :– सा, धसांप, गपधप, गरेसा अथवा सां – ध ऽ ऽ सां पप – ग प ध प, ग रे रे – सा – सां – सां – ध ऽ सां प ।

धन्यधैवत राग, जैत राग का प्रातर्गेय जवाब है, क्योंकि रात्रि के अंतिम प्रहर में गाए जानेवाले राग प्रातर्गेय ही कहे जा सकते हैं । शुद्ध धैवत वादी होने के कारण इसके उत्तरांग में देस का भास होता है, किंतु कोमल ऋषभ उस भ्रम को दूर कर देता है । यह एक अप्रचलित प्रकार है, कुशल गायक इसे महफिल के अंत में जब श्रृंगार–रस में गाते हैं तो यह बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है ।

राग : धन्यधैवत – एकताल (मध्यलय)

स्थाई : गजाननना गणनायक गणेश,
लंबोदर एकदंत सुरेश ।

अंतरा : सुख दायक सिद्धपति,
कर परकम्मा तीरथ, उमा महेश ॥

राग धन्यधैवत मारवा थाट का बहुत ही अप्रचलित राग माना गया है । प्रस्तुत बंदिश के बारे में चर्चा करे तो रचनाकार (डॉ. जय सेवक) प्रभु के गुणगान गा रहे है और अपनी भक्ति को इस बंदिश में ढाल दिया है और कह रहे है कि सब प्रभु के शरण के आसित है । कहा जाता है कि, सर्वप्रथम हिन्दुस्तान में संगीत केवल ईश्वर प्राप्ति के मार्ग का अमूल्य पथ हुआ करता था । इसी कारण प्राचीन बंदिशों या रचनाओं में ईश्वर के प्रति प्रेम, भक्ति, लीला और गुणगान के शब्द मिला करते थे ।

शब्दानुसार रचनाकार प्रथम पूज्य भगवान श्री गजानन का आवाहन कर रहे हैं । यह बंदिश शांत और स्थिर भाव उत्पन्न कर रही है, जो कि यह बंदिश को भक्तिसभर बनाती हैं । औडव प्रकार का राग होते हुए भी संपूर्ण भक्तिरस को उत्पन्न करने की क्षमता रखता है । भगवान श्री गणेश के विभिन्न नाम का स्मरण करते हुए समर्पण की भावना को बखूबी दिखाई पड़ती है ।

भगवान श्री गणेश की उपासना करने से ही सुख की प्राप्ति होती है । यह सुखदायक भगवान को प्रार्थना करने से ही सारी सिद्धियाँ हांसल हो सकती है । ऐसा ही बोध देते हुए भक्ति की तीव्रता और अपने मातपिता शिव और पार्वती को ही अपना सर्वस्व माननेवाले गजानन परिक्रमा करके तीर्थ का पुण्य प्राप्त करने के बराबर मानते है । ऐसा ही बोध मानव जीवन को रचनाकार ने देने का प्रयास किया है कि, अपने मातपिता को ही प्रभु के समान मानना चाहिए और जैसे ही भगवान की सेवा करके उनको रीझाया जाता है वैसे ही अपने मातपिता की सेवा करने से ही जीवन सफल हो जाता है और तीरथ करने पर जो पुण्य मिलता है उतना ही पुण्य मातपिता की सेवा करने से प्राप्त होता है । जो अपने आप में समर्पण की भावना बताते है और भक्तिरस उत्पन्न होता दिखाई देता है । राग में 'प ग' की स्वरसंगति भक्तिरस को उत्पन्न करने में अति सहायरूप और कर्णप्रिय साबित हुई हैं । स्थिर गंभीर स्वर संगतियाँ से रची गई यह रचना शांतरस उत्पनन करने का मुख्य कारण साबित हुई है । भक्तिमय के शब्दों के साथ ही भगवान श्री गणेश का अलौकिक रूप का विवरण रचनाकार ने किया है, जो इस बंदिश की स्थिरता बताते हुए बेहद ही शांत और भक्तिरस को उत्पन्न करता हैं ।

स्थाई [1]

									सा	ध	प
									ग	जा	न
ध	–	प	ग	प	–	ध	प	–	ग	रे॒	–
ना	ऽ	ग	ण	ना	ऽ	य	क	ऽ	ग	णे	ऽ
ग	–	प	–	ग	–	रे॒	रे॒	–	सा	रे॒	ग
श	ऽ	लं	ऽ	बो	ऽ	द	र	ऽ	ऐ	ऽ	क
ग	प	ध	रें॒	सां	ध	प	ग	रे॒	सा	ध	प
दं	ऽ	त	सु	रे	ऽ	ऽ	ऽ	श	ग	जा	न
X		0		२		0		३		४	

1. डॉ. जय सेवक से प्राप्त

अंतरा

प	ध	सां	–	रें	सां	ध	–	सां	रें	सां	–
सु	ख	दा	ऽ	य	क	सि	ऽ	द्ध	प	ति	ऽ
ध	सां	रें	गं	रें	–	सां	–	प	–	ध	प
क	र	प	र	क	ऽ	म्मा	ऽ	ती	ऽ	र	थ
ग	प	ध	रें	सां	ध	प	ग	रे	सा	ध	प
उ	ऽ	मा	म	हे	ऽ	ऽ	ऽ	श	ग	जा	न
X		0		२		0		३		४	